



# मजदूर बिगुल

मारुति मजदूरों के केस का  
फ़ैसला : पूँजीवादी व्यवस्था  
की न्याय व्यवस्था का  
बेपर्द नंगा चेहरा **3**

आगामी दिल्ली नगर निगम  
चुनाव में सच्चे क्रान्तिकारी  
विकल्प को चुनो! **6**

आधार : लूटतन्त्र की  
रक्षा के लिए जनता पर  
निगरानी और नियन्त्रण का  
औज़ार **16**

## विधानसभा चुनाव परिणाम : फासिस्ट शक्तियों की सत्ता पर बढ़ती पकड़

### इसका जवाब न तो झूठी उम्मीदें हैं और न ही हताश कार्रवाइयाँ एक जुझारू प्रगतिशील सामाजिक आन्दोलन खड़ा करने की तैयारियों में लगना होगा!

उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तराखण्ड, गोवा और मणिपुर विधानसभाओं के चुनाव के नतीजे कुछ लोगों को चौंकाने वाले लग सकते हैं लेकिन यह बिल्कुल अप्रत्याशित नहीं थे। चुनाव परिणाम आने के बाद जो कुछ हुआ और हो रहा है वह भी कतई अप्रत्याशित नहीं है। उत्तर प्रदेश में योगी आदित्यनाथ को मुख्यमंत्री बनाना और गोवा व मणिपुर में बर्जुआ लोकतंत्र का भी माखौल बनाते हुए चुनाव में पिछड़ने के बावजूद भाजपा की सरकारें बनना आने वाली राजनीति के संकेत मात्र हैं।

देशके सबसे बड़े और विविधताओं से भरे राज्य का मुख्यमंत्री एक ऐसा व्यक्ति बना है जो कहता रहा है कि एक हिन्दू लड़की के बदले सौ मुस्लिम लड़कियों को उठा लाया जाएगा और

मुसलमानों को धमकी के स्वर में कहता रहा है कि 'मेरे एक हाथ में माला है तो दूसरे हाथ में भाला है।' उनका कहना है कि मुसलमानों की संख्या जहाँ दस फीसदी से ज्यादा है वहीं दंगे होते हैं और जहाँ उनकी संख्या 35 फीसदी से ज्यादा है, वहाँ गैर-मुस्लिम एकदम सुरक्षित नहीं हैं। योगी आदित्यनाथ की 'हिन्दू युवा वाहिनी' पूर्वी उत्तर प्रदेश के 35 जिलों में पहले से ही सक्रिय है और वह छोटे-छोटे शहरों-कस्बों और गाँवों तक अपना प्रभाव विस्तार कर रही है। मऊ और आजमगढ़ में साम्प्रदायिक आग भड़काने में योगी की भूमिका सर्वज्ञात है। गोरखपुर में तो उनका आतंक राज चलता ही है। चुनावों के दौरान मोदी और अमित शाह ने पूरे उत्तर प्रदेश के पैमाने पर उग्र हिन्दुत्व

#### सम्पादक मण्डल

का खुला खेल खेलने के लिए योगी को पूरी छूट दी थी और अब आरएसएस ने एक लम्बी योजना के तहत भाजपा के कई पुराने नेताओं के दावे को किनारे लगाकर उन्हें मुख्यमंत्री बनवा दिया है।

आज पूँजीवाद अब तक के सबसे गहन संकट के दौर से गुजर रहा है। ऐसे में दो ही चीजें हो सकती हैं। महँगाई, बेरोजगारी, आर्थिक बदहाली से तबाह जनता को कुछ तात्कालिक राहत के नारे देकर शान्त किया जाये जिन्हें जनता बार-बार देखकर ऊब चुकी है। ऐसे में अगर कोई क्रान्तिकारी शक्ति समाज में न हो जो इस असन्तोष को व्यापक आन्दोलन में बदल सके तो फिर फासिस्टों के लोकंरंजक नारे और

धुआँधार प्रचार जनता को अपने साथ बहा ले जाने में कामयाब हो जाते हैं। इतिहास में इसके अनेक उदाहरण मौजूद हैं।

उदारीकरण-निजीकरण की नीतियों पर बुलेट ट्रेन की रफ्तार से अमल कर रही भाजपा सरकार जानती है कि इनसे पैदा होने वाली बेरोजगारी, महँगाई और चौतरफा तबाही पूरे देश में विस्फोटक जनाक्रोश को जन्म देगी। इसको रोकने के दो कारगर फार्मूले शासक वर्ग के पास हैं। एक, साम्प्रदायिक आधार पर जनता को बाँटने की राजनीति और दूसरा, अन्धराष्ट्रवाद। साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण की राजनीति लाजिमी तौर पर जातिगत ध्रुवीकरण की राजनीति को भी नयी संजीवनी देगी और पूरा देश एक बार फिर मण्डल-कमण्डल

के भँवर में उलझकर रह जायेगा। उत्तर प्रदेश के चुनाव में इस प्रक्रिया की शुरुआत हो चुकी है।

विश्व पूँजीवादी व्यवस्था का निरन्तर जारी संकट पूरी दुनिया में फासिस्ट शक्तियों या फासिस्ट प्रवृत्तियों वाले शासकों को बल दे रहा है। अमेरिका में ट्रम्प की जीत, ग्रीस, फ्रांस, इटली, जर्मनी आदि देशों में फासीवादी-अर्द्धफासीवादी शक्तियों की बढ़ती ताकत कोई हैरानी की बात नहीं है। भारत में पूँजीवादी जनतंत्र शुरू से ही अधूरा और विकलांग रहा है। फासिस्ट ताकतें यहाँ समाज और राज्य व्यवस्था के ताने-बाने में शुरू से मौजूद रही हैं। अलग-अलग दौरों में देशी पूँजीवाद का संकट बढ़ने के साथ (पेज 8 पर जारी)

## अर्थव्यवस्था की विकास दर बढ़ने के आँकड़े : जुमला सरकार का एक और झूठ

पिछले दिनों, चुनावों से ठीक पहले जुमला सरकार ने एक और फर्जी आँकड़ा जारी किया कि नोटबंदी से अर्थव्यवस्था की विकास दर और तेज हो गई! कॉर्पोरेट कारोबारी मीडिया में भी कोई इसको स्वीकार नहीं कर पा रहा था कि दिसम्बर तिमाही में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में 7% की बढ़ोतरी हो गयी। सच तो यह है कि हर कंपनी के इस तिमाही के नतीजे बता रहे हैं बिक्री में कमी आयी, चाहे साबुन-तेल-चाय पत्ती हो या स्कूटर-मोटर साइकिल या पेंट - मगर सरकार कहती है निजी खपत 10% बढ़ गई है! शायद लोगों

ने नोटबंदी के वक्त बैंकों की लाइनों में लगकर भारी खरीदारी की, पर बिक्री हुई नहीं। खेतों में खड़ी फसल आयी भी नहीं थी मगर आँकड़ों में खेती में पिछले महीने से वृद्धि और भी बढ़ गई, रिकॉर्ड उत्पादन होने वाला है। अगर ऐसा है तो फिर सरकार 25 लाख टन गेहूँ आयात क्यों कर रही है, वह भी महँगे दामों पर?

सेक्टर फ्रॉर मॉनीटरिंग इंडियन इकॉनमी के आँकड़े कहते हैं कि नोटबंदी के बाद पूँजीगत खर्च में ज़बर्दस्त कमी आई है - पर सरकारी आँकड़ों के अनुसार 2 साल तक नकारात्मक रहने के बाद खास इसी तिमाही में पूँजीगत

निवेश 3.5% बढ़ गया! कोई महामूर्ख ही विश्वास करेगा कि जब बिक्री नहीं हो रही थी, नकदी थी नहीं, सब लाइन में लगे थे, उस नवम्बर-दिसम्बर में कारोबारी नया निवेश कर रहे थे। औद्योगिक उत्पादन का इंडेक्स लगातार महीनेवार गिरावट बता रहा है और सरकार ने अचानक घोषण कर दी कि उत्पादन बढ़ गया। बिक्री नहीं हो रही थी फिर भी सेठ लोग जोरों से उत्पादन कर रहे थे, मोदी जी के आँकड़े सुधारने के लिए।

कमाल की बात यह कि पिछले साल इसी तिमाही में इन्होंने जो 7.9%

की वृद्धि बताई थी, उसे चुपके से घटाकर 6.9% कर दिया गया। झूठे आँकड़ों से विकास दिखाने के लिए अभी और भी संशोधन होंगे, मगर झूठ सामने आ ही जायेगा।

इस पर यही कहा जा सकता है कि जीडीपी दर से मिलने वाली सीख है कि जिसका रोजगार छिन जाये उसकी आमदनी बढ़ जाती है; जिसके पास पैसा कम हो वो ज्यादा चीजें खरीदता है; जब लोग सामान कम खरीदते हैं तो बिक्री ज्यादा होती है; अगर खाना कम और असंतुलित मिले तो लोगों की सेहत बेहतर होती है; किसानों की

उपज की कीमत घट जाये तो वे खुशी से पागल हो जाते हैं; खुशी में पागल किसान आत्महत्याएं बहुत ज्यादा करते हैं; फ़ैक्टरी बंद रहे तो उत्पादन ज्यादा होता है, तब बैंक कर्ज न दें तो भी सेठ लोग नये-नये उद्योग लगाने लगते हैं। अगर पिछली वाली लंबी लाइन को मिटा कर छोटा कर दिया जाये तो अब की छोटी लाइन लंबी हो जाती है।

यह भी पूछा जाना चाहिए कि अगर अर्थव्यवस्था ऐसे कुलाँचे भर रही है तो बेरोजगारी का आँकड़ा क्यों बढ़ रहा है? किसानों की खुदकुशी क्यों बढ़ रही है? कुपोषण क्यों बढ़ रहा है?

**बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!**

## आपस की बात

# कोई फ़ैक्टरी, कारख़ाना या कोई छोटी-बड़ी कम्पनी हो, जीवन बदहाली और नर्क़ जैसा ही है

मेरा नाम संदीप है और मैं डोमिनोस पिज़्ज़ा रेस्टोरेंट में काम करता था। मैं वहाँ पिज़्ज़ा डिलीवरी बॉय का काम करता था। इण्टरव्यू के वक़्त हमें यह बताया गया था कि हम सब एक फ़ैमिली (परिवार) की तरह हैं। पर यह ऐसा परिवार है जिसमें सबसे ऊपर के सदस्य (मैनेजर) हैं और वे नीचे के सदस्यों से गाली बककर बात करते थे। इस बात पर अगर कोई सवाल उठाता या मना करता तो कहते कि परिवार में बड़ों से जुबान नहीं लड़ाते हैं। मैनेजर हमसे अपने निजी काम कराते थे। मना करने पर कहते कि सैलरी तो हम से ही लोगे। नौकरी चले जाने के डर से हम लोगों को उनकी बात माननी ही पड़ती थी।

जहाँ पर पिज़्ज़ा और डिब्बे तैयार करने की जगह थी, वहाँ पर हवा की आवाजाही की जगह तक नहीं थी।

उसकी वजह से शुरू में उल्टी होने की अवस्था बनी रहती थी, पर बाद में धीरे-धीरे आदत सी हो गयी।

हमें यह भी बताया जाता था कि 'कस्टमर' मेहमान की तरह होता है। अगर वह बदतमीज़ी से बात करे और गाली भी बके तो सुन लेना, कुछ बोलना मत। माफ़ी भी हमें ही माँगनी होती थी क्योंकि अगर उसने शिकायत कर दी तो हमें नौकरी से भी निकाला जा सकता था। इसका सामना भी ज़्यादातर हमें ही करना होता था क्योंकि अन्त में पिज़्ज़ा डिलीवरी बॉय को ही पिज़्ज़ा पहुँचाना होता है।

मेरी नौकरी का समय शाम 7 से रात 11 बजे (4 घण्टे) तक था जिसमें मुझे 46 रुपये प्रति घण्टा के हिसाब से तनखाह दी जाती थी। मुझे हमेशा पूरा केश हैण्ड ओवर करने और सभी काम

निपटाने में 12 बज जाते थे और कभी-कभी तो 12:30 भी हो जाते थे जिसका मुझे कोई पैसा नहीं दिया जाता था।

जब कोई फ़ैस्टिवल (त्यौहार) होता है तो उस दौरान हमसे कहा जाता था कि जो ज़्यादा डिलीवरी करेगा, उसे 100 या 150 रुपये मिलेंगे। इस कॉम्पिटिशन में सभी लोगों से अत्यधिक काम लिया जाता था और फिर बाद में पैसे देने में भी काफ़ी झिंकाते थे। पैसे ऐसे देते थे जैसे एहसान कर रहे हों।

मतलब यहाँ भी हर तरह से लाठी और भैंस रुपये-पैसे वालों की ही है, मेहनत-मशक्कत करने वालों के लिए चाहे कोई फ़ैक्टरी, कारख़ाना या कोई छोटी-बड़ी कम्पनी हो, जीवन बदहाली और नर्क़ जैसा ही है।

सन्दीप, राज़ियाबाद

## "यह लड़ाई चलती रहेगी..."

(पेज 14 से आगे)

चन्द्रशेखर आज़ाद, भगवतीचरण वोहरा, यशपाल और कैलाशपति ने हिस्सा लिया था, मैं विद्यार्थियों, किसानों और मज़दूरों के बीच काम तेज़ करने और इस मक़सद से पार्टी का एक अलग हिस्सा गठित करने का निर्णय लिया गया जिसके अध्यक्ष दामोदर स्वरूप और सचिव भगवतीचरण होंगे।

...क्रान्तिकारियों का मानना था कि "अगर मज़दूर वर्ग या उत्पीड़ित किसान अपने आर्थिक हितों का ख़याल रखते हैं तो उनमें से कोई भी ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौते के बारे में सोच भी नहीं सकता"। दूसरी ओर वे जानते थे कि भारतीय पूँजीपति कभी भी साम्राज्यवाद के खिलाफ़ संघर्ष में शामिल नहीं हो सकते क्योंकि उन्हें ख़ुद को बनाये रखने के लिए साम्राज्यवाद के समर्थन की ज़रूरत है। इस तरह, एच.एस.आर.ए. और नौजवान भारत सभा का काम समाज के इन उत्पीड़ित तबकों की क्षमता और उनके बीच अपना सामाजिक आधार बढ़ाने की उत्सुकता को प्रतिबिम्बित करता है। नौजवान भारत सभा ने इस दिशा में कुछ काम किया और मज़दूरों-किसानों को गोलबन्द करने की कोशिशें कीं। इन दोनों तबकों को सभा की गतिविधियों में शामिल होने के लिए विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया। सभा ने स्पष्ट घोषणा की कि वह जनसभाएँ करने के मुक़ाबले मज़दूरों-किसानों को संगठित करने में ज़्यादा विश्वास करती है। नौजवान भारत सभा ने 1931 के दिल्ली समझौते की निन्दा की क्योंकि इससे मज़दूरों और किसानों को कुछ नहीं मिला था। सभा ने 1929 में कई किसान आन्दोलनों में हिस्सा लिया और देश के लाखों नौजवानों का आह्वान किया कि वे रूसी नौजवानों की तरह गाँवों में जीवन बितायें। उन्हें वहाँ भारत में आने वाली क्रान्ति के असली मायने समझाने थे।

गाँववालों को यह समझाना और महसूस कराना था कि नयी क्रान्ति से महज़ शासन करने वालों की अदला-बदली नहीं होगी। वह पूरी तरह नयी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था कायम करने का काम करेगी।

... एच.एस.आर.ए. भारतीय समाज में फैली हर किस्म की संकीर्णता, रूढ़िवाद और धार्मिक उन्माद के खिलाफ़ था। शुरूआती क्रान्तिकारी आन्दोलनों के विपरीत धर्म को इसके संगठनकर्ताओं के सेक्युलर और राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर प्रधानता नहीं दी जाती थी जो देश के अलग-अलग धार्मिक समूहों से आते थे। रूढ़िवादी और सामाजिक भेदभाव पैदा करने वाली जातिवादी सोच को दूर करने और लोगों में स्वस्थ सेक्युलर राष्ट्रीय भावनाएँ विकसित करने के लिए नौजवान भारत सभा सामाजिक मेल-जोल के आयोजन करती थी और सामाजिक-राजनीतिक मसलों पर व्याख्यान करवाती थी।

... एच.एस.आर.ए. के 'बम का दर्शन' में भी कहा गया कि "आज की तरुण पीढ़ी को जो मानसिक गुलामी तथा धार्मिक रूढ़िवादी बन्धन जकड़े हैं उनसे छुटकारा पाने के लिए तरुण समाज की जो बेचैनी है, क्रान्तिकारी उसी में आने वाली क्रान्ति के अंकुर देख रहा है।"

समय बीतने के साथ एच.एस.आर.ए. के नेताओं का यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण परिपक्व होता गया। उनकी बहुसंख्या कम्युनिज़्म के आदर्शों के करीब आ गयी, जो व्यक्तिगत आतंकवादी कार्रवाइयों के बजाय जनता की कार्रवाई में भरोसा करता था।<sup>15</sup> चन्द्रशेखर आज़ाद भी यह महसूस करते थे कि "इस सोच में कुछ तो गड़बड़ है कि मुट्ठीभर बहादुर और आत्म-बलिदान की

नौजवानों का दल अपनी कार्रवाइयों से पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन को क्रान्तिकारी दिशा दे सकता है।"<sup>16</sup> वह व्यापक जनान्दोलन की आवश्यकता और गुप्त आतंकवादी गतिविधियों की निरर्थकता के कायल हो चुके थे।<sup>18</sup> आज़ाद यह मानते थे कि "हमारे काम में कहीं कुछ गड़बड़ी ज़रूर थी जिसकी वजह से उतना काम और बलिदान करने पर भी पूरे राष्ट्रीय आन्दोलन को हम क्रान्तिकारी दिशा नहीं दे सके थे।"<sup>19</sup> सुखदेव ने भी साथियों को लिखे पत्र में ऐसा ही कहा है और यह साफ़ कर दिया है कि अब गुप्त गतिविधियाँ बन्द हो जानी चाहिए और खुला काम शुरू कर दिया जाना चाहिए क्योंकि अब जनता उनके आदर्शों को समझती है। अब बम धमाकों की ज़रूरत नहीं है। भगतसिंह ने जेल में कार्ल मार्क्स और लेनिन को पढ़ा था और रूस में बोलशेविक क्रान्ति की कामयाबी का विस्तृत अध्ययन किया था। भारत में संघर्ष की सही राह क्या हो इसे लेकर बुनियादी सवाल उनके सामने उपस्थित थे। भविष्य के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक ढाँचे का चरित्र और स्वरूप क्या होना चाहिए? क्या गोरे आक्राओं को उखाड़ फेंकने के बाद सत्ता की चाभी राजे-रजवाड़ों, नवाबों, सामन्तों, पुरोहितों, पूँजीपतियों और सूदखोरों के हाथ में रहेगी? भगतसिंह सोचते थे कि ये तत्त्व भारत में ब्रिटिश सत्ता के सबसे बड़े पिछलग्गू और सामाजिक आधार थे और जनता का शोषण करने और उसे दबाने-कुचलने में उनका साथ देते थे। भगतसिंह ने अच्छी तरह यह समझ लिया था कि साम्राज्यवाद के इन चाकरों को दूर किये बिना भारत की आज़ादी सिर्फ़ अमीरों, सम्प्रदायवादियों, दलालों-ग़दरों और ऊँची जातियों के अमीर तबकों के लिए रह जायेगी, और 95 प्रतिशत ग़रीब और कमज़ोर लोगों को इससे कुछ नहीं मिलेगा।

### घोषणापत्र का प्रपत्र: प्रपत्र 4 (नियम 8 के अन्तर्गत)

समाचार पत्र का नाम	मज़दूर बिगुल
पत्र की भाषा	हिन्दी
आवृत्ति	मासिक
पत्र का खुदरा बिक्री मूल्य	पाँच रुपये
प्रकाशक का नाम	कात्यायनी सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
प्रकाशन का स्थान	निशातगंज, लखनऊ
मुद्रक का नाम	कात्यायनी सिन्हा
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ
मुद्रणालय का नाम	मल्टीमीडियम, 310, संजयगंधी पुरम, फैज़ाबाद रोड, लखनऊ-226016
सम्पादक का नाम	सुखविन्दर
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज लखनऊ-226006
स्वामी का नाम	कात्यायनी सिन्हा
राष्ट्रीयता	भारतीय
पता	69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज लखनऊ-226006
मैं कात्यायनी सिन्हा, यह घोषणा करती हूँ कि उपर्युक्त तथ्य मेरी अधिकतम जानकारी के अनुसार सत्य हैं।	
हस्ताक्षर (कात्यायनी सिन्हा) प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी	

### 'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।
2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।
3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।
4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क्रतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।
5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता:

मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना

डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020

बैंक खाते का विवरण: Mazdoor Bigul

खाता संख्या: 0762002109003787, IFSC: PUNB0076200

पंजाब नेशनल बैंक, निशातगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता: वार्षिक: 70 रुपये (डाकखर्च सहित); आजीवन: 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं:

फ़ोन: 0522-4108495, 9721481546

ईमेल: bigulakhbar@gmail.com

फ़ेसबुक: www.facebook.com/MazdoorBigul

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
दिल्ली सम्पर्क	: फ़ोन: 8853093555
	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-94, फ़ोन: 011-64623928
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति - ₹ 5/-
	: वार्षिक - ₹ 70/- (डाक खर्च सहित)
	: आजीवन सदस्यता - ₹ 2000/-

जज और जेलर तक उनके, सभी अफ़सर उनके...

## मारुति मज़दूरों के केस का फ़ैसला : पूँजीवादी व्यवस्था की न्याय व्यवस्था का बेपर्द नंगा चेहरा

10 मार्च को गुडगाँव के ट्रायल कोर्ट ने मारुति मानेसर प्लाण्ट के 148 गिरफ्तार मज़दूरों में से 31 को दोषी करार दिया गया जिसमें 13 मज़दूरों को हत्या के जुर्म का ज़िम्मेदार ठहराया, 18 मज़दूरों को गम्भीर चोट पहुँचाने और अतिक्रमण करने का अपराधी घोषित किया है, बाक़ी 117 लोग जो जेल में चार साल की सज़ा भुगत चुके थे, आरोपमुक्त कर दिया गया। मारुति सुज़ुकी के मानेसर प्लाण्ट में 2011 से ही प्रबन्धन और मज़दूरों के बीच लगातार तनाव और टकराव की स्थिति मौजूद रही थी। मज़दूर अपनी यूनियन पंजीकृत कराने और काम की अमानवीय स्थितियों पर ध्यान दिलाने की ओर भी लगातार संघर्षरत थे। इन्हीं टकराव की स्थितियों के बीच 18 जुलाई 2012 को यह घटना घटी जिसमें मानेसर प्लाण्ट के अन्दर ही एक एचआर मैनेजर अवनीश कुमार देव की मृत्यु हो गयी। तब से अभी तक 147 मज़दूरों को हत्या व हत्या के प्रयास के जुर्म में जेल में डाल दिया गया। इन 147 के इतर 66 मज़दूरों पर अलग से मुक़दमे दायर किये गये। घटना के तुरन्त बाद 546 स्थायी व 1800 ठेका मज़दूरों को काम से निकाल बाहर किया गया। इस पूरे मामले की जब 10 मार्च को सुनवाई हुई तो उसमें 31 में से 13 लोगों पर हत्या, हत्या के प्रयास, आगजनी, षडयन्त्र का आरोप तय हुआ। बाक़ी 18 पर मारपीट, चोट पहुँचाने और अनाधिकृत प्रवेश, जमघट लगाने का आरोप तय हुआ है। 31 दोषी मज़दूरों में से 13 मज़दूरों - राममेहर, सन्दीप ढिल्लों, राम विलास, सरबजीत, पवन कुमार, सोहन कुमार, अजमेर सिंह, सुरेश कुमार, अमरजीत, धनराज, योगेश, प्रदीप गुर्जर, जियालाल को 302, 307, 427, 436, 323, 325, 341, 452, 201, 120B जैसी धाराओं के अन्तर्गत दोषी ठहराया गया है। दूसरी कैटेगरी में शामिल 14 लोगों को धारा 323, 325, 148, 149, 341, 427 के तहत आरोपी ठहराया गया है। तीसरी कैटेगरी में शामिल 4 लोगों को धारा 323, 425, 452, के तहत आरोपी ठहराया गया है। जिन 31 मज़दूरों को अपराधी घोषित किया गया है उनकी सज़ा की मियाद 17 मार्च को सुनाई जायेगी।

इस फ़ैसले ने पूँजीवादी न्याय व्यवस्था के नंगे रूप को उघाड़कर रख दिया है! यह तब है जब हाल ही में अपने जुर्म कबूलने वाले असीमानन्द और अन्य संघी आतंकवादियों को ठोस सबूत होने और असीमानन्द द्वारा जुर्म कबूलने के बाद भी बरी कर दिया जाता है। ये दोनों मुक़दमे बर्जुआ राज्य के अंग के रूप में न्याय व्यवस्था की हकीकत दिखाते हैं। यह राज्य व्यवस्था और इसलिए यह न्याय व्यवस्था पूँजीपतियों और उनके मुनाफ़े की सेवा में लगी है, मज़दूरों को इस व्यवस्था में न्याय नहीं

मिल सकता है। मारुति के 148 मज़दूरों पर चला मुक़दमा, उनकी गिरफ्तारी और 4 साल से भी ज़्यादा जेल में बन्द रखा जाना इस पूँजीवादी न्यायिक व्यवस्था के चेहरे पर लगा नकाब पूरे तरह से उतारकर रख देता है। यह साफ़ कर देता है कि मारुति के 31 मज़दूरों को कोर्ट ने इसलिए सज़ा दी है ताकि तमाम मज़दूरों के सामने यह मिसाल पेश की जा सके कि जो भी पूँजीवादी मुनाफ़े के तंत्र को नुक़सान पहुँचाने का जुर्म करेगा उसे बख़्शा नहीं जायेगा।

जिन 13 लोगों के खिलाफ़ 302 व 307 की धाराएँ लगायी गयी हैं उनके खिलाफ़ बहुत कमज़ोर साक्ष्य मौजूद थे।



कोर्ट में हुई कार्यवाही के दौरान पेश की गयी दलीलों की एक संक्षिप्त रिपोर्ट नीचे दी गयी है जिससे यह साफ़ जाहिर हो जाता है कि किस प्रकार सरकार व यह पूरी न्याय व्यवस्था दरअसल पूँजीपतियों के लिए ही है!

1) यह ताज्जुब की बात है कि जिन 13 मज़दूरों पर हत्या का आरोप है वे सभी यूनियन के नेतृत्व में शामिल थे। कोर्ट में चली कार्यवाही के दौरान हत्या व आगजनी के आरोप में गिरफ्तार मज़दूरों के खिलाफ़ कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं पाया गया, न ही कोई सीसीटीवी की रिकॉर्डिंग थी और न ही अभियोजन पक्ष का गवाह किसी भी मज़दूर को पहचान ही सका! ताज्जुब की बात है कि दीपक आनन्द जिसके द्वारा 55 मज़दूरों के खिलाफ़ एफ़आईआर दायर किया गया, उनमें से किसी को भी वह व्यक्ति नहीं पहचान पाया। सलिल विहारी जिसने 'जियालाल' नामक एक मज़दूर को हत्या का मुख्य आरोपी बताया था, वह उसे पहचानता तक नहीं था!

2) 18 जुलाई 2012 को मुठभेड़ की घटना करीब 7:20 पर शाम में हुई परन्तु प्लाण्ट के बाहर सुबह 11 बजे से ही पुलिस फ़ोर्स की तैनाती थी पर पुलिस को तब तक अन्दर नहीं घुसने दिया गया जब तक हालात नियंत्रण से बाहर नहीं हो गये। यह बिलकुल साफ़ दिख रहा है कि यह प्रशासन द्वारा रचा गया षडयन्त्र था। यहाँ तक कि मज़दूरों के कपड़ों में कम्पनी के कुछ बाउंसर भी उस मुठभेड़ में शामिल थे।

3) एक तरफ़ एफ़आईआर में यह

उल्लेख किया गया है कि करीब 400-500 की संख्या में मज़दूर लाठियों व डण्डों के साथ एचआर में प्रवेश किये थे व प्रशासन के लोगों को मारा, परन्तु कोर्ट में गवाही देते वक़्त किसी गवाह ने अपने बयान में डण्डों व लाठियों का उल्लेख नहीं किया है!

4) एक और दलील जो दी गयी वह यह कि प्लाण्ट में हर मैनेजर को करीब 4-5 मज़दूरों ने घेरकर हथियारों से मारा जिससे प्रशासन पक्ष यह साबित करने की कोशिश करता है कि मज़दूरों ने जान से मारने का प्रयास किया था। पर यदि ऐसा ही था तो हर मैनेजर को गम्भीर चोटों की शिकायत होनी चाहिए थी पर उनमें से



ज़्यादातर को कोई चोट नहीं आयी थी, ऐसा कैसे सम्भव है? बचाव पक्ष द्वारा इस पर सवाल करने पर यह कहा गया कि चूँकि ख़ुद मज़दूरों ने उन्हें छोड़ दिया इसलिए उन्हें कोई चोट नहीं आयी। इस बयान से यही साबित होता है कि मज़दूरों ने जान से मारने का प्रयास नहीं किया था।

5) इस पूरी कार्यवाही के दौरान एक और बात ग़ौर करने लायक थी। 147 में से 89 मज़दूरों के नाम 4 ठेकेदारों द्वारा वर्णानुक्रम के अनुसार दिया गया था। कोर्ट में पेश किये गये पेपर के आधार पर यह पाया गया कि वीरेंद्र नामक एक गवाह ने उन 25 मज़दूरों के नाम दिये जिनका नाम A-G तक से शुरू होता है, इसी प्रकार एक दूसरे गवाह याद राम ने अन्य 25 मज़दूरों के नाम दिये जिनके नाम G-P तक से शुरू होते थे, अशोक राना ने 26 मज़दूरों के नाम दिये जो P-S से शुरू होते थे व अन्य एक गवाह ने बाक़ी 13 मज़दूरों के नाम दिये जो S-Y से शुरू होते थे। ऐसा भला कैसे सम्भव

है? इस प्रकार वर्णानुक्रम के अनुसार नाम दिया जाना यह दर्शाता है कि पुलिस को ये नाम कम्पनी द्वारा दिये गये होंगे। यानी नंगे तौर पर पुलिस प्रशासन के साथ मिलकर मज़दूरों को झूठे केस में फँसाने की कोशिश कर रही थी।

6) बाक़ी जिस आगजनी की घटना का आरोप मज़दूरों पर लगाया गया है, उस घटना में कोई प्रमाण नहीं मिला है और न ही कोई गवाह ही बता पाया कि आग कैसे लगी व किसने लगायी। पहले तो पूछताछ के दौरान विरोधाभासी गवाही सुनने को मिली। मृतक अवनीश देव की बॉडी एम 1 रूम से बरामद हुई थी और गवाहों ने पहले यह दावा किया कि रूम में आग अन्दर से ही लगायी गयी थी, जहाँ मुठभेड़ हुई थी। परन्तु जाँच करते हुए उनके तर्क फिर बदल गये, वे बात बदलकर यह कहने लगे कि आग बाहर से लगायी गयी थी। इसके साथ ही यहाँ जिस माचिस से आग लगाने की बात की गयी है वह भी सन्देहास्पद है। घटना के अगले दिन यानी 19 जुलाई को सुबह 6 बजे जब सिक्क्यूरिटी गार्ड ओम प्रकाश ने उस रूम की तलाशी ली तब कोई माचिस नहीं मिली थी, फिर अचानक से उसी



दिन 12 बजे एफ़एसएल के अधिकारी को उस रूम में एक माचिस की डिब्बी मिली। इस आगजनी की घटना की गवाही देने वाले 16 व्यक्तियों में से जिन 3 व्यक्ति ने नाम सहित मज़दूरों को दोषी बताया, कोर्ट में वे उन मज़दूरों को चेहरे से पहचान तक नहीं पाये थे!

7) 18 जुलाई की घटना में अवनीश देव जिसकी मौत हुई थी, पोस्टमॉर्टम की रिपोर्ट के अनुसार मौत ऑक्सीजन न मिल पाने की कमी से हुई थी। जबकि झड़प के दौरान जो चोट उसे आयी थी वह उसके दाँप पैर के घुटने में थी। इससे कहीं से भी यह साबित नहीं होता कि अवनीश देव की मृत्यु कोई हत्या का मामला है। यानी 302 व 307 की जो धाराएँ लगायी गयी हैं, वे कहीं से भी जायज़ नहीं।

कोर्ट में चली इस पूरी कार्यवाही के बाद जब 13 मज़दूरों को 302 व 307 की धाराएँ लगायी जाती हैं, तब ज़हन में बर्टोल्ट ब्रेष्ट के 'मदर' नाटक के गीत की पंक्तियाँ याद आती हैं कि जज और

जेलर तक उनके, सभी अफ़सर उनके... इस पूरी घटना की मीडिया में रिपोर्टिंग से लेकर मुक़दमे के दौरान मज़दूरों के खिलाफ़ दी गयी दलीलों से भी इस केस के सार को समझा जा सकता है। कोर्ट में केस शुरू होने से पहले ही मीडिया ने मज़दूरों को ख़ूनी ठहरा दिया। 2012 में फ़ैक्टरी में हुई मैनेजर की मौत की ज़िम्मेदारी बिना किसी जाँच के मारुति के मज़दूरों पर मढ़ दी गयी लेकिन जो उत्पीड़न मारुति के मज़दूर सहते आ रहे थे और जो यातनाएँ निर्दोष मज़दूरों ने और उनके परिवारों ने इन 4 सालों के बीच भुगती हैं, उसके लिए यह व्यवस्था किसे ज़िम्मेदार ठहराएगी? मैनेजमेंट के व्यक्ति की मौत को बहाना बनाकर 148 मज़दूरों को जेलों में सड़ा दिया जाता है परन्तु क्या कभी आज तक कोई पूँजीपति मज़दूरों को फ़ैक्टरियों में मौत के घाट उतारने, मज़दूरों के हक़ों को छीनने के जुर्म में गिरफ्तार भी किया गया या एक रात भी हवालात में गुज़ार कर आया है? कल-कारखानों में दमन किसी अख़बार के पन्ने पर ख़बर नहीं बनती जबकि अपने ख़ून-पसीने की कमाई की माँग करने वाले मज़दूरों को सड़क पर उतरने पर मुजरिम घोषित कर दिया जाता है।

मुनाफ़े के तराजू में मज़दूरों की ज़िन्दगी की कोई क्रीम नहीं है। यह न्यायालय बिना ठोस सबूतों के 4 सालों तक मज़दूरों को जेल में सड़ा सकती है लेकिन ऑटोमोबाइल सेक्टर में आये दिन मज़दूरों पर हो रहे अत्याचारों और श्रम क़ानूनों के नंगे हनन की रोकथाम के लिए उसकी यही तत्परता हवा हो जाती है। मारुति की घटना के ज़रिये मज़दूरों को एक नज़ीर पेश की है कि जो संगठित होने या पूँजी के चक्र को थामने की कोशिश करेगा, उसे यह व्यवस्था कुचल देगी। ख़ुद कोर्ट ने इस दबाव की पुष्टि अपने उस फ़ैसले में की थी, जब मज़दूरों को बेल देने से मना करने के पीछे कोर्ट ने पूँजी के निवेश को खतरा होने और फ़ैक्टरियों के वहाँ से हट जाने की बात करते हुए मज़दूरों को 'सबक' सिखाने की बात की। परन्तु यह मुनाफ़ाख़ोर मज़दूरों के प्रतिरोध करने की ज़िद को नहीं तोड़ पायी है। मारुति मज़दूरों के संघर्ष के आगाज़ के बाद से गुडगाँव-धारुहेडा-बवाल-नीमराना-टप्पूकड़ा पूरी ऑटोमोबाइल बेल्ट में मज़दूरों के ऐसे ही स्फ़ुट आन्दोलनों का साक्षी बना जिन्हें पुलिस प्रशासन द्वारा बर्बर तरीक़े से दबाया गया। मारुति मज़दूरों के आन्दोलन के बाद पूँजीपतियों ने किसी भी मज़दूर संघर्ष को दबाने-कुचलने में कोई कोताही नहीं बरती। परन्तु यह दमन इस संघर्ष को रोक नहीं सकता बल्कि यह दावानल भड़क उठेगा। मारुति के मज़दूरों को जेलों में रखकर यह व्यवस्था जिस चिंगारी को हवा दे रही है वो दावानल बन पूँजी के इस जंगल को खाक कर देगी।

## अँधेरा है घना, मगर संघर्ष है ठना! ओमैक्स के बहादुर मज़दूरों का संघर्ष जारी है!

ओमैक्स के ठेका मज़दूर पिछले 42 दिन से नौकरी से बर्खास्त किये जाने के खिलाफ़ शानदार लड़ाई लड़ रहे हैं। कम्पनी की इस फ़रमानशाही को चुनौती देते हुए मज़दूर पिछली 1 फ़रवरी यानी बर्खास्तगी के दिन से कम्पनी गेट पर खूँटा गाड़कर संघर्ष कर रहे हैं। इस संघर्ष में मज़दूरों ने कुर्बानियों के बावजूद इस संघर्ष को जीवित रखा है। 13 फ़रवरी को मैनेजमेण्ट व ठेकेदार के दबाव और आर्थिक मन्दी के कारण ओमैक्स के एक मज़दूर अजय ने आत्महत्या कर ली। परन्तु इस घटना से मज़दूर साथियों का हौसला टूटा नहीं बल्कि कई गुना और बढ़ गया और उन्होंने इस संघर्ष को अपने मुक़ाम तक पहुँचाने की ठान ली। मज़दूरों ने 13 फ़रवरी की रात को अपने दिवंगत साथी का शव लेकर देर रात तक फ़ैक्टरी गेट जाम करके रखा व तीन माँगों को लेकर प्रदर्शन किया। मज़दूरों की पहली माँग थी कि मृत मज़दूर के परिवार

को मुआवज़ा व परिवार के एक सदस्य को नौकरी दी जाये। दूसरी माँग यह थी कि गुनहगार ठेकेदार और मैनेजमेण्ट के खिलाफ़ तुरन्त कानूनी कार्यवाही की जाये। तीसरी माँग मज़दूरों ने यह उठाई कि निकाले गये सभी श्रमिकों को काम पर वापस लिया जाये। मज़दूरों का रोष देखते हुए पुलिस प्रशासन ने पूरे इलाके को छावनी में तब्दील कर दिया। परन्तु मज़दूरों के इस संघर्ष के उग्र होने और ओमैक्स ग्रुप के अन्य मज़दूरों के इस संघर्ष में शामिल होने के डर से पुलिस और कम्पनी मैनेजमेण्ट को मज़दूरों के दबाव के आगे झुकना पड़ा। कम्पनी प्रबन्धन ने मृतक के परिवार को साढ़े पाँच लाख रुपये का मुआवज़ा देने की घोषणा की और पुलिस ने कम्पनी प्रबन्धन व ठेकेदार के खिलाफ़ एफ़आईआर दर्ज करने की माँग मान ली। परन्तु निकाले गये मज़दूरों को काम पर वापस लेने की माँग को मैनेजमेण्ट ने टाल दिया कि यह

फ़ैसला कम्पनी के बड़े अधिकारियों की मौजूदगी में ही हो सकता है।

यह भी गौरतलब है कि जिस मज़दूर ने अपनी ज़िन्दगी के 14 साल इस फ़ैक्टरी को दे दिये उसकी मौत पर कम्पनी मैनेजमेण्ट के किसी आदमी ने मज़दूर की मौत पर अफ़सोस जताना तो दूर मज़दूरों से बात करने तक की ज़हमत नहीं उठायी। मुनाफ़े की हवस में अन्धे कम्पनी प्रबन्धन के लिए मज़दूर की ज़िन्दगी की क्रीमत महज़ एक पुर्जे जितनी है जिसे इस्तेमाल करने के बाद फेंक दिया जाता है। परन्तु ओमैक्स के मज़दूर पूँजी की इस गुलामी के खिलाफ़ अपनी फ़ैक्टरी गेट पर डेट हुए हैं। मज़दूरों को कम्पनी के अन्दर मौजूद स्थायी मज़दूरों के बीच एकता स्थापित होने का ख़तरा लम्बे समय से खटक रहा था। 6 मार्च को कम्पनी ने यूनियन बॉडी सहित 18 स्थायी मज़दूरों को काम से निकाल दिया और काम पर आने पर स्थायी

मज़दूरों से एक दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर करने को कहा जिसके तहत मज़दूरों को मीटिंग करने व संगठित होने की मनाही थी। कुछ मज़दूरों ने नासमझी और भ्रम में इसपर हस्ताक्षर कर दिये लेकिन करीब 100 मज़दूरों ने ऐसा करने से मना कर दिया। वे हड़ताल पर बैठे हुए मज़दूरों के साथ आ गये और प्रबन्धन के विरुद्ध नारेबाजी करने लगे। यह इस संघर्ष का एक बेहद महत्वपूर्ण बिन्दु था, जहाँ स्थायी और अस्थायी मज़दूरों के बीच एक ज़बरदस्त एकता कायम की जा सकती थी और पूरे संघर्ष को एक नये मुक़ाम तक पहुँचाया जा सकता था। परन्तु यह नहीं किया गया बल्कि उल्टा सभी स्थायी मज़दूर वापस काम पर चले गये। यह क्रम इस संघर्ष को कितना नुक़सान पहुँचायेगा यह तो आने वाले वक़्त में ही पता चलेगा परन्तु अगर मज़दूर इस संघर्ष को अपनी फ़ैक्टरी गेट से पूरे सेक्टर तक लेकर जायें तो

इस संघर्ष को विस्तृत किया जा सकता है। यह संघर्ष दिखलाता है कि मज़दूर हर क्रीमत चुकाकर लड़ाई लड़ने को तैयार हैं, सवाल है उसे संगठित कर रास्ता दिखाने वाली एक सेक्टरव्यापी क्रान्तिकारी ट्रेड-यूनियन की। गौरतलब है कि, इस सेक्टर की विभिन्न ट्रेड-यूनियनों ने इस संघर्ष में मज़दूरों के साथ खड़े होने की बात लगातार कही है। इसी क्रम में विगत 17 फ़रवरी को होण्डा कामगार 2 एफ़ समूह, टपूकड़ा जो खुद भी पिछले एक साल से अपनी माँगों को लेकर संघर्षरत है, के साथियों ने भी धरनास्थल पर आकर मज़दूर साथियों की हौसला-अफ़जाई की। रिपोर्ट लिखे जाने तक 43 दिन बीत जाने के बाद भी ओमैक्स के मज़दूरों का संघर्ष बदस्तूर जारी है।

## दलाल केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों और अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी संगठनों की ग़द्दारी व मौक़ापरस्ती

(पेज 5 से आगे)  
बीएमएस की भूमिका के बारे में सोची-समझी चुप्पी अख़्तियार किये हुए थे यही नहीं, इनके लोग नेतृत्व को बार-बार ये कह रहे थे कि अगर बीएमएस चली गयी तो आन्दोलन को आर्थिक मदद कौन देगा! हालाँकि इस बात में भी कोई सच्चाई नहीं थी कि बीएमएस आन्दोलन को कोई आर्थिक मदद दे रहा था। लेकिन यह कथन अपने आपमें हमारे 'क्रान्तिकारी-इन्क़लाबी कामरेडों' के बारे में काफ़ी-कुछ ज़ाहिर कर देता है।  
रैली के ही दिन लेबर विभाग में भी तारीख़ थी। और बीएमएस की इस शर्मनाक हरकत के बाद रैली से लौटते वक़्त आधे से ज़्यादा मज़दूर छूट गये। श्रम विभाग पहुँचने पर मज़दूरों ने अपना गुस्सा ज़ाहिर भी किया लेकिन बीएमएस ने फिर अपने तेवर दिखाये और आन्दोलन के नेतृत्व ने एक बार फिर उसके सामने घुटने टेक दिये। बीएमएस को जब लगा कि आज मामला उसके हाथ से निकल सकता है तो तुरन्त उसने 5000 रुपये चन्दा देने और मुख्यमन्त्री खट्टर से मिलवाने का लुकमा फ़ेंका। एक तरफ़ जहाँ आम मज़दूर बीएमएस की भूमिका को लेकर सशकित थे, वहीं दूसरी तरफ़ उनकी समिति अभी

भी उसे साथ लेकर चलने की पक्षधर थी। बीएमएस के प्रति समिति का ऐसा रुख़ होने का काफ़ी हद तक श्रेय 'क्रान्तिकारी-इन्क़लाबी कामरेडों' को ही जाता है।

इसके बाद श्रम विभाग से कई और मीटिंगें होती हैं, लेकिन सब बेनतीजा। अब तक आन्दोलन बिखराव का शिकार हो चुका था। कई मज़दूर अपना हिसाब करके घर चले गये थे। हताशा में, समिति द्वारा अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल की घोषणा कर दी जाती है। लेकिन पुलिस-प्रशासन अब श्रम कार्यालय के बाहर मज़दूरों को बैठने नहीं देता। इसके बाद बचे हुए मज़दूर एक सुनसान पार्क में जाकर बैठ जाते हैं। श्रम विभाग से बातचीत की आखिरी तारीख़ 30 जनवरी को होती है और यही आन्दोलन का भी आखिरी दिन साबित होता है। बीएमएस और समिति के सदस्य मज़दूरों को आन्दोलन की राह छोड़कर हिसाब लेने के लिए कहते हैं। बीएमएस अलग से जाट आन्दोलन और धारा 144 का डर दिखलाता है। इसके एक रात पहले समिति द्वारा मज़दूरों का व्हाटसप ग्रुप डिलीट कर दिया जाता है ताकि आगे मज़दूरों के बीच कोई बात हो ही न सके। स्पष्ट था कि समिति अब

बीएमएस के इशारों पर चल रही। इस आखिरी मीटिंग में जब कुछ मज़दूरों और ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन के साथियों ने इस फ़ैसले के विरोध में बात रखनी चाही तो समिति के सदस्यों ने बीएमएस की शाह पर उन्हें बोलने से रोक दिया और आन्दोलन में बीएमएस द्वारा की गयी मदद का हवाला देने लगे। इस पूरे घटनाक्रम पर भी हमारे 'क्रान्तिकारी-इन्क़लाबी कामरेड' मुँह में दही जमाये हुए तमाशबीन बने खड़े देखते रहे। इसके साथ ही आन्दोलन समाप्त हो गया। यहाँ एक और बात का ज़िक्र आवश्यक है। जब आन्दोलन अपने उफान पर था तो ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन और बिगुल मज़दूर दस्ता के साथी मज़दूरों की आम सभा में और समिति के सदस्यों को भी बार-बार ये कह रहे थे कि एक बार अपने आन्दोलन की आवाज़ को दिल्ली तक ले जाने की ज़रूरत है क्योंकि गुडगाँव में कोई भी मीडिया हीरो मज़दूरों के संघर्ष को कवरेज नहीं दे रही थी और दिल्ली आकर, चाहे सिर्फ़ एक दिन के लिए ही सही, मज़दूर अपने पक्ष को सबके सामने रख सकेंगे और उनके संघर्ष को कुछ हद तक तो कवरेज मिलेगी ही। इस बात पर मज़दूर और

उनकी समिति, दोनों ही राजी थे लेकिन न सिर्फ़ बीएमएस ने बल्कि 'क्रान्तिकारी-इन्क़लाबी कामरेडों' ने भी इस सुझाव का पुरज़ोर विरोध किया। हमेशा की तरह कानाफूसी और कुत्साप्रचार की राजनीति के ज़रिये इस प्रभावी क्रम को उठाने से हीरो मज़दूर आन्दोलन को रोक दिया। अन्दर-खाने समिति के सदस्यों से गुप-चुप बात करके ये अपनी ही अहमकाना रणनीति को थोपने का काम करने लगे जो कि वास्तव में, बीएमएस की पूँछ पकड़कर चलने की ही रणनीति थी। ये मज़दूरों के बीच में ग़ैर-जनवादी प्रधानी की राजनीतिक संस्कृति को स्थापित करने का प्रयास करते रहते हैं ताकि कोई इनकी अहमकाना हरकतों पर सवाल खड़ा कर ही न सके। कहने के लिए 'क्रान्तिकारी-इन्क़लाबी कामरेड' मज़दूरों की पहलकदमी की जुबानी बात करते हैं, लेकिन असल व्यवहार में इनकी राजनीति ट्रेड यूनियन अवसरवाद की ही है।

इन्ही कमियों और दिक्कतों के चलते हीरो मज़दूरों का सम्भावना-सम्पन्न संघर्ष एक निराशापूर्ण हार और शर्मनाक समझौते में समाप्त हो गया। आन्दोलन का नेतृत्व इस हार के लिए उतना ज़िम्मेदार नहीं है, जितना कि ये

दलाल और मौक़ापरस्त ताक़तें हैं। हीरो संघर्ष का नेतृत्व करने वाली समिति में स्वतन्त्र विवेक से निर्णय लेने और मज़दूरों की सामूहिक ताक़त में यक्रीन करने का बेहद अभाव तो था ही। साथ ही, 'बड़े भैया' (ये 'बड़े भैया' कोई भी ट्रेड यूनियन संघ हो सकता था) की पूँछ पकड़कर चलने की प्रवृत्ति और मानसिकता भी मौजूद थी। लेकिन इन तमाम प्रवृत्तियों को प्रश्रय देने का काम ऐसी ही अवसरवादी ताक़तें करती हैं, जैसी कि इस आन्दोलन में मौजूद थीं। ज़ाहिरा तौर पर हीरो आन्दोलन कोई आखिरी आन्दोलन नहीं है और आये दिन ऑटोमोबाइल बेल्ट के किसी न किसी हिस्से से हड़ताल या संघर्ष की आहटें सुनाई देती हैं। लेकिन ये भी स्पष्ट है कि हम अगर अपने दुश्मनों और भितरघातियों की पहचान नहीं करते तो आने वाले दिनों के संघर्षों का भी यही अंजाम होगा। चुनावी पार्टियों से जुड़े ट्रेड यूनियन संघों और 'क्रान्तिकारी-इन्क़लाबी कामरेडों' जैसे अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादियों और राजनीतिक नौबढ़-नौदौलतियों से हमें सावधान रहना होगा। ये पहले भी कई संघर्षों को हार के दलदल में डुबा चुके हैं।

## कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के अवसर पर कार्यक्रम

8 मार्च को अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के अवसर पर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में स्त्री मुक्ति लीग की ओर से एक कार्यक्रम का आयोजन किया गया। कार्यक्रम में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के कला संकाय के प्रथम वर्ष के छात्रों ने अपनी पेंटिंग्स के माध्यम से आज समाज में स्त्रियों की दोगले दर्जे की नागरिकता, उनके सपने और मुक्ति के लिए उनकी लालसा को दिखाया। सभा की शुरुआत "हॉकी खेलती लड़कियाँ" कविता के पाठ

से की गयी। आज देशभर की आधी आबादी दोहरी गुलामी का शिकार है। कहीं वो दहेज के लिए जलाई जा रही है, कहीं कारखानों में खप रही है तो कहीं दफ़्तरों में, तो कहीं चूल्हे में खुद को झोंक देने के लिए मजबूर है। अपने वजूद से बेखबर पितृसत्ता और पूँजीवाद की गुलामी के लिए पिस रही है। साल दर साल महिला विरोधी अपराध की घटनाओं की तादाद बढ़ती जा रही है। खासकर आज का दौर अगर देखा जाये

जब हर ओर फासीवादी हमले हो रहे हैं तो महिलाएँ, अल्पसंख्यक, दलित और मज़दूर वर्ग इसका पहले शिकार हो रहे हैं। यह कोई अप्रत्याशित बात नहीं है कि आवाज़ उठाने पर दिल्ली विश्वविद्यालय की एक छात्रा को फासीवादियों द्वारा बलात्कार की धमकी दी जा रही है। सभा में अपनी बात रखते हुए नौजवान भारत सभा के रमेश ने कहा कि स्त्रियों की मुक्ति का सवाल इस व्यवस्था को बदलने के सवाल से जुड़ा है और

इसके लिए लड़ने की ज़िम्मेदारी हर इंसान पर है, युवा और नागरिक पर है। कोई भी शोषण मुक्त समाज बनाने का प्रोजेक्ट बिना स्त्रियों की भागीदारी के पूरा नहीं हो सकता। साथी अजय ने सावित्रीबाई फुले के संघर्ष के बारे में बात रखते हुए उनकी 120वीं पुण्यतिथि, 10 मार्च, पर उन्हें याद किया। देश का पहला महिला स्कूल खोलने वाली और ताउम्र औरतों और दलितों के हक़ के लिए लड़ने वाली इस महिला के बारे में कोई

मीडिया बात नहीं करता। जिस मीडिया ने अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस पर तमाम तरह के उत्पाद बेचे, उसने उस महिला का जिक्र तक नहीं किया जिसने लड़कियों को पढ़ाने की खातिर समाज के ज़ुल्म सहो। इसके अलावा विश्वविद्यालय छात्र निर्मल और यश ने भी अपनी बात रखी। कविता, आशुतोष, रोबिन ने कविता पाठ भी किया। कार्यक्रम का अन्त नारो के साथ, एक बराबरी का समाज बनाने के संकल्प के साथ हुआ।

# ऑटोमोबाइल सेक्टर में एक और आन्दोलन चढ़ा दलाल केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों और अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी संगठनों की कुत्सित गद्दारी और मौक्रापरस्ती की भेंट

- शिवानी

बिगुल के जनवरी 2017 माह के अंक में गुडगाँव स्थित ऑटोमोबाइल सेक्टर की सबसे बड़ी कम्पनियों में से एक हीरो मोटोकॉर्प से निकाले गये ठेका मजदूरों के आन्दोलन के विषय में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। यह रिपोर्ट आन्दोलन के शर्मनाक तरीके से खत्म होने से पहले लिखी गयी थी और इसलिए इस आन्दोलन का एक राजनीतिक समीक्षा-समाहार उस रिपोर्ट में अनुपस्थित था। लेकिन हीरो के मजदूरों के संघर्ष का समाहार कई कारणों से अनिवार्य है। ऐसा नहीं है कि हीरो में चला संघर्ष ऑटोमोबाइल सेक्टर में चल रहा कोई इकलौता संघर्ष है। इस समीक्षा के लिखे जाने के वक्त भी धारूहेड़ा, हरियाणा में ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री की सबसे बड़ी वेण्डर कम्पनियों में से एक, ओमैक्स ऑटो, के मजदूरों का संघर्ष जारी है। और हीरो के आन्दोलन के पहले भी श्रीराम पिस्टन, बेल्सोनिका, अस्ति, होण्डा आदि के आन्दोलन भी इस सेक्टर में संगठित हुए। इन सभी आन्दोलनों में जहाँ एक तरफ मालिक-प्रबन्धन-श्रम कार्यालय-सरकार का मजदूर-विरोधी चेहरा एकदम स्पष्ट तौर पर दिखलाई पड़ता है, वहीं दूसरी तरफ तथाकथित मजदूर पक्षधर ताकतों का भी असली चरित्र सामने आता है।

अपने समाहार में हम इस दूसरे पक्ष पर अपनी बात केन्द्रित करेंगे। हीरो के संघर्ष में जितनी बेशर्मी और नंगेपन के साथ केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों, विशेष तौर पर फासीवादी ट्रेड यूनियन संघ भारतीय मजदूर संघ (बीएमएस) के दलाली और पूँजीपरस्ती वाले चरित्र को और साथ ही अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी 'क्रान्तिकारी-इन्कलाबी कामरेडों' की इन गद्दार ट्रेड यूनियन संघों के साथ नापाक गठजोड़ बनाने और इनकी गोद में बैठने के इनके पुराने अवसरवादी चरित्र को उजागर किया है, उतना हाल में हुए किसी और संघर्ष में शायद ही दिखा हो। किस तरीके से ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ प्रबन्धन और श्रम कार्यालय के साथ मिलकर मजदूर पक्ष को कानूनी लड़ाई के गोल चक्कर में घुमाती रहती हैं और किस तरह ये 'क्रान्तिकारी-इन्कलाबी कामरेड', जो कि 'मजदूर सहयोग केन्द्र' और 'इन्कलाबी मजदूर केन्द्र' के नाम से काम करते हैं, इन मजदूर-विरोधी ताकतों से गलबहियाँ करते हुए आन्दोलनों को बिखराव और निराशा की तरफ ले जाते हैं, इसका अगर कोई सबसे ज्वलन्त और ताजा उदाहरण आपको कहीं देखना है तो वह हीरो के ठेका मजदूरों के आन्दोलन में देखने को मिलेगा। इसी कारण से इस अंक में हीरो आन्दोलन की एक विस्तृत आलोचना पेश की जा रही है।

हीरो के मजदूरों के आन्दोलन की

शुरुआत तब हुई जब हीरो प्रबन्धन ने नोटबन्दी के बहाने लगभग 1000 ठेका मजदूरों को काम से बाहर कर दिया। वैसे तो ऑटोमोबाइल सेक्टर में ठेका मजदूरों की छँटनी एक आम परिघटना है लेकिन हीरो कम्पनी इसमें ही सबसे आगे है। 6 महीने काम पर रखकर मजदूरों को बाहर कर देना हीरो प्रबन्धन की आम नीति है। लेकिन इस बार जब मजदूरों को काम से बाहर किया जा रहा था तो नोटबन्दी को वजह बताया गया। दूसरे, इस बार न सिर्फ 6 महीने के लिए रखे गये मजदूरों को बाहर किया जा रहा था, बल्कि ऐसे ठेका मजदूरों को भी निकला जा रहा था जो 9-10 साल तक कम्पनी में काम कर चुके थे। ये सभी मजदूर कम्पनी की मुख्य उत्पादन लाइन पर स्थाई मजदूरों के समान ऑपरेटर का काम कर रहे थे। वेतन देने से लेकर ड्यूटी लगाने का काम मुख्य तौर पर कम्पनी प्रबन्धन करता था। लेकिन जब कम्पनी ने मजदूरों को बाहर का रास्ता दिखाया तो सारा जिम्मा ठेका कम्पनियों पर डाल दिया। असल में आज पूरे गुडगाँव-मानेसर-धारूहेड़ा-बावल के औद्योगिक बेल्ट की ऑटोमोबाइल सेक्टर की कम्पनियों में मुख्य उत्पादन लाइन पर इस तरह लाखों ठेका मजदूरों को बेहद कम मजदूरी पर खटाया जा रहा है जो श्रम कानूनों की नज़र में सरासर गैर-कानूनी है। लेकिन प्रबन्धन-प्रशासन-सरकार का गठजोड़ सरेशाम सभी श्रम-कानूनों का उल्लंघन करता है।

लेकिन जब इस बार एक साथ इतने सारे मजदूरों को काम से निकाला गया तो हीरो के मजदूरों की समझ में भी यह बात आ गयी कि बिना आन्दोलन लड़े बहाली असम्भव है। इसलिए अपने आन्दोलन को चलाने के लिए हीरो से निकाले गये इन ठेकाकर्मियों ने 'हीरो मोटोकॉर्प ठेका मजदूर संघर्ष समिति' नाम से एक समिति का गठन किया। समिति का गठन चूँकि काम से निकाले जाने के बाद ही हुआ था, इसलिए समिति का नेतृत्व न तो परिपक्व था और न ही अनुभवी। और इसलिए शुरू से ही इसके नेतृत्व में पूँछ पकड़कर चलने की प्रवृत्ति मौजूद थी। यहाँ एक बात का जिक्र महत्वपूर्ण है। हीरो मोटोकॉर्प, गुडगाँव के प्लांट में एक यूनियन पहले से ही मौजूद है, जिसका नाम 'हीरो मोटोकॉर्प एम्प्लाइज यूनियन' है और जो समाजवादी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ हिन्द मजदूर सभा (एचएमएस) से सम्बद्ध है। इस यूनियन ने शुरू से ही जुबानी जमाखर्च के सिवा और कोई सहयोग नहीं दिया। ऐसा रवैया, आमतौर पर, इस सेक्टर की ज्यादातर यूनियनों का रहता है जो किसी न किसी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ से जुड़ी होती हैं। चूँकि ये सारी यूनियनें स्थायी मजदूरों का प्रतिनिधित्व करती हैं और इनकी सदस्यता के दायरे में सिर्फ स्थायी मजदूर

आते हैं (ट्रेड यूनियन कानून, 1948 के अनुसार एक कम्पनी या प्रतिष्ठान में केवल स्थायी कामगार ही यूनियन के सदस्य बन सकते हैं), ठेका मजदूरों की माँगों और उनके संघर्ष के साथ आमतौर पर इनकी कोई एकरूपता नहीं बनती है और इन यूनियनों की तरफ से ऐसी कोई कोशिश की भी नहीं जाती है। साथ ही, आम स्थायी मजदूरों तक भी सीधी पहुँच न होकर इन यूनियनों के जरिये ही पहुँच बन पाती है जिसके कारण आम स्थायी मजदूर चाहकर भी ठेका मजदूरों के संघर्षों से नहीं जुड़ पाते हैं। हीरो आन्दोलन में भी यही हुआ। एचएमएस से जुड़ी इस यूनियन ने ठेका मजदूरों के इस संघर्ष से दूरी बनायी रखी और यूनियन के पदाधिकारियों (जिन्हें अक्सर 'प्रधानजी' कहा जाता है) द्वारा एक-दो सभाओं में दर्शन-मात्र देने से ज्यादा कुछ नहीं किया गया।

जहाँ तक आन्दोलन को शुरू करने का प्रश्न है, तो यह सच है कि हीरो के इन मजदूरों ने इसकी शुरुआत खुद से ही की। किसी भी केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ ने किसी क्रिस्म की कोई मदद नहीं की। वैसे भी ठेका मजदूरों के लिए कुछ भी करना इन केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों की शान के खिलाफ है। ठेका मजदूरों के मुद्दों पर ये संघ मुँह पर ताला लगाकर बैठे रहते हैं। वास्तव में, ठेका मजदूरों के मुद्दों पर तो ये केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघ ठेका मजदूरों के संघर्ष के खिलाफ काम करता है। हीरो के मामले में भी ऐसा ही हुआ। तमाम केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों और उनके नेताओं ने जुबानी समर्थन तो दिया लेकिन वास्तविक समर्थन और मदद किसी ने नहीं की। पहले तो इन ट्रेड यूनियन संघों ने इस आन्दोलन की कोई सुध नहीं ली और जब ली तो फिर पूरे आन्दोलन को ही गड्ढे में धकेल दिया। हीरो से निकाले गये एक पुराने परमानेण्ट वर्कर के जरिये भारतीय मजदूर संघ इस आन्दोलन में घुसता है। यह टर्मिनेटेड वर्कर बीएमएस का सदस्य है। इससे सम्पर्क हीरो के ठेका मजदूरों की समिति ही करती है।

हालाँकि इस बीच 'मजदूर सहयोग केन्द्र' नाम से काम कर रहे अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी संगठन की भी आन्दोलन में घुसपैठ होती है। यह वही संगठन है जिसने मारुति आन्दोलन से लेकर अस्ति के मजदूरों के आन्दोलन तक और फिर होण्डा मजदूरों के आन्दोलन जैसे कई सम्भावना-सम्पन्न संघर्षों में अपने निहायती अवसरवादी चरित्र को दिखलाया है और इन्हें असफलता के दलदल में डुबाने का श्रेय काफ़ी कुछ इन राजनीतिक नौदौलतियों को भी जाता है। हम बिगुल के पन्नों पर इसके बारे में पहले भी लिख चुके हैं। हीरो के आन्दोलन की असफलता के पीछे कुछ कारण तो वे हैं जोकि आज पूरे ऑटोमोबाइल पट्टी

के मजदूर आन्दोलन के ठहराव का कारण बने हुए हैं। लेकिन इस संघर्ष की असफलता के पीछे श्रम विभाग द्वारा अनसुनी और थकाये जाने की रणनीति, बीएमएस की गद्दारी और हीरो प्रबन्धन के अडिगल रवैये के अलावा, हीरो मजदूर आन्दोलन के भीतर सक्रिय इन 'इन्कलाबी-क्रान्तिकारी कामरेडों' के संकीर्ण सांगठनिक हित और अव्वल दर्जे की अवसरवादिता भी थी। ये 'स्वतः स्फूर्ततावाद और मजदूरवाद के पुजारी' वास्तव में हर क्रिस्म के यूनियन जनवाद और आम मजदूरों की पहलकदमी के विरोधी हैं। ये किसी भी आन्दोलन में नेतृत्व के लोगों के सलाहकार बने घूमते हैं और अपने राजनीतिक नौबदपन का परिचय देते रहते हैं। आम मजदूरों में इनकी कोई पकड़ नहीं होती, किसी भी जनदिशा की कारवाई से इन्हें परहेज है और नेतृत्व के लोगों से कानाफूसी करके और अलग-थलग ले जाकर उनके कानों में लगातार कुछ मन्त्रोच्चारण करके ये अपने एनजीओ-नुमा सहयोग केन्द्र चला रहे हैं। एक अन्य संगठन जो 'इन्कलाबी मजदूर केन्द्र' नाम से काम करता है, तमाम मसलों पर इनसे निम्न स्तरीय एकता बनाता है, और हीरो के आन्दोलन में भी इसने यही किया। कुछ समय पहले तक ये दोनों ही संगठन ऑटोमोबाइल सेक्टर के मजदूरों की सेक्टरगत और इलाकाई पैमाने की एकता की बात का मखौल उड़ाते हुए घूमा करते थे। लेकिन हाल ही में इन्होंने अपने सुर बदल लिये हैं और आजकल ये भी इलाकाई आधार की एकता की बात करने लगे हैं। हालाँकि इसमें चौकाने वाली कोई बात नहीं है। क्योंकि अपने चौर्य लेखन और लाइन चोरी के लिए ये पहले ही काफ़ी कुख्यात हैं।

बीएमएस के आन्दोलन में घुसने के बाद वह हर जगह अपना नाम चमकाने का काम शुरू कर देती है। अपने झण्डे-बैनर के जरिये वह यह छवि बनाने की कोशिश करती है कि आन्दोलन उसके नेतृत्व में चल रहा है। आम सभाओं में बीएमएस अपने वकील और नेताओं के माध्यम से मजदूरों के बीच बार-बार इस बात को रेखांकित कर रही थी कि आन्दोलन और संघर्ष का रास्ता छोड़कर कानूनी रास्ता पकड़ लो। साथ ही एचएमएस से सम्बद्ध परमानेण्ट वर्कर्स की यूनियन भी कह रही थी कि वह एक अच्छा समझौता करवा देगी। इनके एक नेता का कहना था कि वो मजदूरों को अच्छा रेट दिलवा देगी! इन यूनियनों का वर्ग चरित्र काफ़ी कुछ तो इनकी खुद की बातों से ही स्पष्ट हो जाता है। यहाँ ये भी बताते चलें कि इस बीच ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन और बिगुल मजदूर दस्ता के साथी लगातार आम मजदूरों और उनकी समिति से कह रहे थे कि गुडगाँव मानेसर, धारूहेड़ा और बावल तक

फैले इस ऑटोमोबाइल बेल्ट में लगे लाखों मजदूरों तक अपने आन्दोलन की बात ले जायी जाये और अन्य ठेका मजदूरों तक पहुँचने के लिए एक परचा निकाला जाये। और फिर ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन की पहल पर एक परचा निकालकर मजदूरों की टोलियाँ बनाकर पूरे इलाके में बाँटा भी गया। गौरतलब है कि ऐसी सभी जनकारवाइयों से हमारे 'क्रान्तिकारी-इन्कलाबी कामरेड' दूर रहते थे।

हीरो के मजदूरों ने छँटनी के बाद श्रम विभाग में अपनी शिकायत दर्ज करवा दी थी। इसके बाद ही मजदूरों को थकाने और कोर्ट-कचहरी के गोल-गोल चक्कर में घुमाने का सिलसिला शुरू हो जाता है। तारीख पर तारीख देने की नौटंकी कई दिनों तक चलायी जाती है, जिसमें लेबर विभाग तय स्क्रिप्ट के हिसाब से अपना रोल खेलता है और दलाल बीएमएस अपना! यह नौटंकी इसलिए की जाती है ताकि ठेकेदारों के पास पूरा मौक्रा रहे कि वे मजदूरों को फ़ोन करके या घर-घर जाकर पूरा हिसाब-किताब कर लें। बिना किसी निष्कर्ष के बात चलती रहती है। हीरो आन्दोलन में भी कई बार बुलाने पर भी प्रबन्धन का पक्ष श्रम कार्यालय में हाज़िर नहीं हुआ और उसने सारी जिम्मेदारी ठेकेदारों के ऊपर डाल दी।

इसके बाद एक रैली की योजना समिति द्वारा बनायी जाती है जो गुडगाँव में राजीव चौक से शुरू होकर हीरो के गेट पर खत्म होनी थी। रैली की पूरी बागडोर गैर-जनवादी तरीके से बीएमएस ने अपने हाथ में ले ली। और हीरो मजदूरों की समिति ने सहर्ष यह जिम्मेदारी उसको दे भी दी। क्योंकि बीएमएस यह कह रही थी कि उसके रहने पर पुलिस-प्रशासन मजदूरों पर हाथ नहीं डालेगी और इसलिए रैली और एक तरीके से आन्दोलन का नेतृत्व उसे दे दिया जाये। इस तरीके का मोल-भाव केन्द्रीय ट्रेड यूनियन संघों की पुरानी आदत है और इसमें भी बीएमएस ऐसी हरकत बेहद बेशर्मी और नंगेपन के साथ अंजाम देती है। खैर, मजदूरों के नेतृत्व ने बिना कोई विरोध जताये उसकी यह बात मान भी ली। इसके बाद बीएमएस ने रैली कम्पनी गेट पर खत्म न करवाकर बीच में ही रोककर खत्म करवा दी और आनन-फ़ानन में ज़ापन सौंपकर बिना किसी आश्वासन या बात के ही मजदूरों को वापस चलने को बोल दिया। इस घटना के बाद मजदूरों में असन्तोष काफ़ी बढ़ गया। ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉन्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन और बिगुल मजदूर दस्ता के साथी आम मजदूरों को बीएमएस के असली मजदूर-विरोधी चरित्र के बारे में शुरू से ही आगाह कर रहे थे। साथ ही, समिति के सदस्यों से भी बार-बार इस विषय में बात कर रहे थे। इसके उल्टे, हमारे 'क्रान्तिकारी-इन्कलाबी कामरेड'

(पेज 4 पर जारी)

## आगामी दिल्ली नगर निगम चुनाव में कम बुरा विकल्प नहीं, सच्चे क्रान्तिकारी विकल्प को चुनो!

### दिल्ली नगर निगम चुनावों में करावलनगर, खजूरी व वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र के वॉर्डों में खड़े होंगे 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' के उम्मीदवार

दिल्ली नगर निगम (एमसीडी) के चुनाव 22 अप्रैल को होने वाले हैं। बताने की ज़रूरत नहीं है कि मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए चुनाव का मतलब रह गया है कम बुरे दिख रहे विकल्प को चुन लेना। कारण यह कि आम मेहनतकश जनता के पास चुनने के लिए तमाम अमीरपरस्त पार्टियाँ ही होती हैं। लेकिन इस बार एक क्रान्तिकारी विकल्प के रूप में 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' द्वारा खजूरी, करावलनगर और वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र के वॉर्डों में उम्मीदवार खड़े किये जा रहे हैं। अब कम बुरा विकल्प छाँटने की ज़रूरत नहीं है। सच्चे क्रान्तिकारी विकल्प को चुनना होगा। यह सच है कि पूँजीवादी चुनावों के जरिये ही व्यापक मेहनतकश आबादी को बेरोज़गारी, महँगाई, भ्रष्टाचार, भूख और गरीबी से आज़ादी नहीं मिल सकती है। ऐसा तो उस इंकलाब के जरिये ही सम्भव है, जिसकी बात शहीदे-आज़म भगतसिंह ने की थी और जिस क्रान्ति के फलस्वरूप समूचे उत्पादन, राज-काज और समाज के ढाँचे पर सच्चे मायने में मज़दूरों-मेहनतकशों का हक़ होगा। लेकिन यह भी सच है कि मौजूदा व्यवस्था के दाघरे के भीतर हमें हमारे कानूनसम्मत अधिकार भी तब तक हासिल नहीं हो सकते हैं, जब तक कि मज़दूरों-मेहनतकशों के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष को चुनावों में पेश न किया जाये। आज यदि पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर होने वाले चुनावों की बात की जाय तो देश के करीब 75 फीसदी औद्योगिक व खेतिहर मज़दूरों तथा गरीब किसानों की कोई नुमाइन्दगी नहीं है। पिछले 70 वर्षों में हम देख चुके हैं कि कांग्रेस, भाजपा, सपा, बसपा, आम आदमी पार्टी, व नकली लाल झण्डे वाली संसदीय वामपंथी पार्टियाँ वास्तव में पूँजीपति वर्ग के ही अलग-अलग हिस्सों की नुमाइन्दगी करती हैं। मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश आबादी के पास चूँकि कोई विकल्प नहीं होता इसलिए वह कभी इस तो कभी उस चुनावी पूँजीवादी पार्टी को वोट देने को मजबूर हो जाती है। जब कांग्रेस के शासन से ऊब जाते हैं, तो हम कांग्रेस की कारगुजारियों की उसे सज़ा देने के लिए भाजपा को वोट दे देते हैं और जब भाजपा की पूँजीपरस्त नीतियों से ऊब जाते हैं तो उसे सज़ा देने के लिए कांग्रेस को वोट दे देते हैं। लेकिन इससे हमारे वर्ग हितों पर कोई फ़र्क नहीं पड़ता और हमें वे हक़ भी नहीं हासिल हो पाते जिनका वायदा पूँजीवादी व्यवस्था में हमसे किया जाता है जैसे कि आठ घण्टे का कार्यदिवस, न्यूनतम मज़दूरी, रोज़गार की गारण्टी, आवास का अधिकार, सबको समान शिक्षा का अधिकार, साफ़-सफ़ाई व साफ़ पीने के पानी का हक़ और हमारे अन्य जनवादी व नागरिक अधिकार। इसका कारण यह है कि समाज के हर क्षेत्र में मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष की मौजूदगी होनी चाहिए। पूँजीवादी

चुनावों में भी मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष की नुमाइन्दगी होनी चाहिए। क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा यही स्वतन्त्र मज़दूर पक्ष निगम चुनाव में पेश कर रहा है।

हर पार्टी या दल किसी न किसी वर्ग की नुमाइन्दगी करता है। भाजपा और कांग्रेस बड़े पूँजीपतियों और व्यापारियों की पार्टियाँ हैं, वहीं 'आम आदमी पार्टी' छोटे और मँझोले मालिकों, ठेकेदारों, व्यापारियों के हितों की नुमाइन्दगी करती है। अन्य चुनावी पार्टियों का चरित्र भी कुछ ऐसा ही है और वे सभी छोटे या बड़े, औद्योगिक, वित्तीय या व्यापारिक पूँजीपति वर्ग और उनकी चाकरी करने वाले उच्च मध्य वर्गों की ही नुमाइन्दगी करती हैं। इस समय कोई ऐसी पार्टी नहीं है जो कि दिल्ली के करीब 75 फीसदी गरीब और निम्न मध्यवर्ग के आम मेहनतकश लोगों और मज़दूरों की नुमाइन्दगी करती हो। चूँकि चुनावों में मज़दूरों-मेहनतकशों का कोई स्वतन्त्र पक्ष मौजूद ही नहीं होता इसलिए हम कभी इस तो कभी उस पूँजीवादी पार्टी को वोट देने को मजबूर होते हैं। इन पार्टियों की सच्चाई क्या है?

केजरीवाल सरकार के दो साल के कार्यकाल से और साफ़ हो गया है कि 'आप' ईमानदारी-सदाचार का लबादा ओढ़कर दिल्ली के खाते-पीते मालिकों-व्यापारियों की सेवा में ही जी-जान से लगी हुई है। यही कारण है कि इस पार्टी में ऐसे धन्नासेठ ही ज़्यादा जुड़ रहे हैं और चुनाव में 'आप' टिकट भी इन्हीं व्यापारियों, कारखाना मालिकों और धन्नासेठों को ही दे रही है। केजरीवाल सरकार ने दिल्ली के आम मेहनतकशों से जो वायदे किये थे, वे झूठ का पुलिन्दा साबित हुए हैं। पहला झूठ, केजरीवाल सरकार का यह झूठा वायदा कि कच्ची कॉलोनियों को बिना शर्त नियमित किया जायेगा व इन कॉलोनियों में बुनियादी सुविधाएँ दी जायेंगी। अब केजरीवाल सरकार यह काम न करने के बहाने के तौर पर तरह-तरह की शर्तें लगा रही है। दूसरा झूठ, केजरीवाल सरकार का सबसे बड़ा वायदा था कि दिल्ली से ठेका प्रथा समाप्त की जायेगी। दिल्ली में 50 करोड़ से भी ज़्यादा लोग ठेके पर ही काम करते हैं। न सिर्फ़ केजरीवाल सरकार अपने इस वायदे से मुकर गयी बल्कि जब हज़ारों ठेका मज़दूर दिल्ली सचिवालय पर केजरीवाल को यह वायदा याद दिलाने पहुँचे तो उनपर बर्बरता से लाठी चार्ज करवाया गया। तीसरा झूठ, केजरीवाल सरकार ने न्यूनतम मज़दूरी बढ़ाने की घोषणा की है जैसा कि हर साल शीला दीक्षित सरकार भी करती थी लेकिन ये बढ़ोत्तरी कभी लागू नहीं होती। और तो और, 'आप' के ही तमाम विधायक और एमसीडी चुनाव के उम्मीदवार खुद वज़ीरपुर से लेकर पीरागढ़ी में कारखाने चलवाते हैं, जैसे राजेश गुप्ता, गिरीश सोनी, आदि। दिल्ली के तमाम औद्योगिक क्षेत्रों में 'आप' विधायकों ने

आज तक न्यूनतम मज़दूरी क्यों नहीं लागू करवाई? ज़ाहिर है, न्यूनतम मज़दूरी में होने वाली ये बढ़ोत्तरीयाँ केवल कागज़ी होती हैं और हमें बेवकूफ़ बनाने के लिए होती हैं। चौथा झूठ, दिल्ली सरकार का दावा कि उसने दिल्ली के हर घर को 700 लीटर मुफ़्त पानी दे दिया है। सच यह है कि मज़दूरों के रिहायशी इलाकों में बड़ी आबादी बाहर गलियों में लगी टोटियों से पानी भरती है। पाँचवाँ झूठ, केजरीवाल ने कहा था कि 55,000 सरकारी पदों पर भर्ती की जायेगी और 8 लाख नये रोज़गार दिये जायेंगे। लेकिन कोई भर्ती नहीं हुई और दिल्ली में बेरोज़गारी दर 11 फीसदी पहुँच गयी। छठा झूठ, दिल्ली में 500 नये सरकारी स्कूल बनाये जायेंगे। तीन सालों में एक भी नया स्कूल नहीं बनाया बस पुराने स्कूलों में कुछ नये कमरे बना दिये और हाथ झाड़ लिये। इससे केजरीवाल सरकार ने नये स्कूल खड़े करने, उनमें स्थायी स्टाफ़ रखने आदि खर्चों से बच गयी और उल्टे पिछले बजट में केजरीवाल ने सैकड़ों करोड़ रुपये अपने झूठे प्रचार पर उड़ा दिये। इस बार भी 198 करोड़ रुपये केजरीवाल सरकार ने अपने प्रचार के लिए रखे हैं। सातवाँ झूठ, 'दिल्ली की झुग्गीवासियों को पक्के मकान दिये जायेंगे।' इन दो सालों एक भी झुग्गीवासी को मकान देना तो दूर, वज़ीरपुर, आज़ादपुर, शकूरबस्ती, खजूरी जैसे इलाकों में झुग्गियों व मकानों को तोड़ा गया है और पक्के मकान मिलने तक सभी सुविधाएँ देने का वायदा भी फुसस ही निकला है। यानी आप सरकार के पिछले दो वर्ष झूठ और धोखाधड़ी के दो वर्ष साबित हुए हैं। वास्तव में, इस पार्टी ने दिल्ली में धनी व्यापारियों, कारखानेदारों और ठेकेदारों की चाँदी कर दी है, उन पर से कर विभाग व चौकसी विभाग के दबाव को पूरी तरह समाप्त कर दिया है, ताकि वे अपनी लूट को बेरोक-टोक चला सकें।

केन्द्र में सत्तासीन भाजपा की मोदी सरकार को लगभग तीन साल होने वाले हैं और उसके द्वारा चुनावों के समय किये गये वायदे जैसे- 'बहुत हुई महँगाई की मार-अबकी बार मोदी सरकार', 'बहुत हुआ नारी पर वार-अबकी बार मोदी सरकार' जैसे अन्य नारों की हवा अब निकल चुकी है। भाजपा द्वारा जो नीतियाँ लागू की गयीं वे एकदम जनविरोधी हैं व इस देश के बड़े पूँजीपतियों और धन्नासेठों के हित में हैं। भाजपा सरकार देश की अकूत सम्पदा को अम्बानी, अडानी व अन्य पूँजीपतियों को देने में लगी हुई है। काले धन-भ्रष्टाचार के नाम पर की गयी नोटबन्दी के इतने दिन बीत जाने के बाद भी काम-धन्धे में मन्दी बनी हुई है। जिस काले धन को बाहर निकालने के लिए ये नोटकी रची गयी उसके बारे में खुद मोदी सरकार चुप हो गयी है। मोदी सरकार ने महँगाई बेलगाम कर दी है। दाल, तेल व आटे की कीमतों में भारी बढ़ोत्तरी हुई है। पिछले तीन महीनों में रसोई गैस सिलेण्डर की कीमत 270 रुपये बढ़ा दी गयी है। पेट्रोल और डीज़ल

की कीमतें भी पिछले कुछ हफ़्तों में 3 बार बढ़ायी गयी हैं। ज़ाहिर है, इसके कारण हर चीज़ महँगी हो जायेगी। भाजपा सरकार का मतलब ही हमेशा होता है महँगाई और बेरोज़गारी में भारी बढ़ोत्तरी! पिछले 2 वर्षों में देश के बेरोज़गारों की आबादी में 2 करोड़ नये बेरोज़गार शामिल हुए हैं। जब अपनी जनविरोधी नीतियों के चलते भाजपा सरकार अलोकप्रिय हो जाती है तो चुनावों में भाजपा मीडिया पर पूर्ण नियंत्रण और प्रचार पर हज़ारों करोड़ रुपये खर्च कर जनता के बीच राय बनवाती है, जनता को साम्प्रदायिक और जातिगत तौर पर बाँटती है। इसके बूते वह कई जगह चुनाव जीत भी रही है जैसे कि उत्तराखण्ड और उत्तर प्रदेश जिसका कारण एक ओर राजनीतिक विकल्पहीनता है तो दूसरी ओर जनता के बीच राजनीतिक चेतना की कमी। दिल्ली नगर निगम में भाजपा का प्रभुत्व है और यहाँ बड़े स्तर पर भ्रष्टाचार कायम है। आम मेहनतकश जनता के इलाकों में गन्दगी की स्थिति बरकरार रहती है। वज़ीरपुर, करावलनगर, खजूरी जैसे मेहनतकशों और निम्न मध्यवर्ग के इलाके तो एक बड़े कूड़ेदान से ज़्यादा नहीं लगते हैं। निगम के सफ़ाई कर्मचारी पिछले 2-3 वर्षों में तनख्वाहें न मिलने के कारण कई बार हड़ताल कर चुके हैं। कड़ियों के घर तो खाने के लाले पड़ गये हैं।

कांग्रेस के बारे में जितनी कम बात की जाये, अच्छा होगा। यह भारत के पूँजीपतियों की सबसे पुरानी भरोसेमन्द पार्टी है। देश में नयी आर्थिक नीतियों के नाम पर जनता और मज़दूर वर्ग को लूटने की निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों की शुरुआत इसी कांग्रेस ने की थी। भाजपा तो बस उसे फासीवादी तानाशाहाना तरीके से आगे बढ़ा रही है। कांग्रेस ने अपने कुल पाँच दशक के राज में जनता को गरीबी, महँगाई, अन्याय और भ्रष्टाचार के अलावा कुछ खास नहीं दिया है। जनता को धर्म-जाति के नाम पर बाँटने का जो काम भाजपा खुलकर करती है वही साम्प्रदायिक राजनीति कांग्रेस बस छुपकर करती है। जिन इलाकों में कांग्रेस के निगम पार्षद हैं वहाँ भी लोगों आम लोगों के लिए हालात बदतर ही हैं। अब ऐसी पार्टी को चुनकर जनहित की उम्मीद करना बेमानी है। ऐसे में अब इस चुनाव में मज़दूर-मेहनतकश जनता के पास क्या विकल्प है?

अब तक चुनाव में मज़दूर-मेहनतकश लोग के पास कम बुरे प्रतिनिधि को चुनने का ही विकल्प होता था; पर इस बार 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' की ओर से आगामी एम.सी.डी. चुनाव में तीन वॉर्डों से आपके बीच उम्मीदवार खड़ा किया जा रहा है: वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र, करावलनगर व खजूरी। 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' का गठन करने वाले राजनीतिक कार्यकर्ता पिछले कई वर्षों से इन क्षेत्रों की जनता के बीच मौजूद रहे हैं और उसके अधिकारों के लिए लड़ते रहे

हैं, जनता को संगठित करते रहे हैं। वे जेल और लाठियों का सामना करने से भी पीछे नहीं हटे हैं। वज़ीरपुर में स्टील मज़दूरों की शानदार हड़ताल और मज़दूरों के सुरक्षा उपकरणों को लेकर चले संघर्ष हों, मज़दूरों के हक़-अधिकारों के लिए चले अनगिनत संघर्ष हों या झुग्गी तोड़ने के खिलाफ़ जुझारू संघर्ष हों; 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' से जुड़े कार्यकर्ताओं ने हमेशा मज़दूरों-मेहनतकशों को अपने अधिकारों के लिए एकजुट किया है। केजरीवाल सरकार द्वारा मज़दूरों से किये गये वायदों को पूरा करवाने के लिए उस पर लगातार दबाव बनाने के वास्ते पिछले तीन वर्षों में तीन बड़े प्रदर्शन आयोजित किये गये। पिछले तीन वर्षों से आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं व सहायकों का भी एक आन्दोलन जारी है जिसका अगला प्रदर्शन 25 मार्च को केजरीवाल के निवास पर होने वाला है। साथ ही, दिल्ली मेट्रो रेल के ठेकाकर्मियों को संगठित करने का काम भी अब 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' से जुड़े राजनीतिक कार्यकर्ता पिछले एक दशक से करते रहे हैं। साथ ही, इन सभी इलाकों में लम्बे समय से लोगों के बीच निशुल्क मेडिकल जाँच मुहैया कराने से लेकर पानी की माँग को लेकर भी सरकार पर दबाव बनाया गया। इसके साथ ही इलाके की गरीब आबादी के बच्चों को नाममात्र शुल्क लेकर 'शिक्षा सहायता मण्डल' के तहत पढ़ाई में सहायता करायी जा रही है। करावलनगर में बादाम मज़दूरों की मज़दूरी बढ़ाने का सवाल हो या पेपर प्लेट मज़दूरों के हक़ों का; इलाके में सड़क के अधिकार की बात हो या पुलिस हिरासत में हुई हत्या के खिलाफ़ संघर्ष की; 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' के कार्यकर्ता हमेशा मज़दूरों-मेहनतकशों को अपने अधिकारों के लिए एकजुट करते रहे हैं। अभी हाल ही में इस इलाके के बदहाल सरकारी स्कूल के मुद्दे को लेकर हमारे संगठन द्वारा छात्र-छात्राओं व नागरिकों को एकजुट कर दिल्ली सरकार पर दबाव बनाया गया जिसके कारण सरकार को स्कूल का निर्माण कार्य शुरू करवाना पड़ा और स्कूल निर्माण तक वैकल्पिक व्यवस्था में स्कूल चलाने के लिए किराये पर जगह ली गयी। खजूरी में भी स्कूल निर्माण के लिए आन्दोलन से लेकर साम्प्रदायिक फासीवादी संघी ताक़तों से लोहा लेने में अब 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' से जुड़े राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने कई वर्षों से जनसंघर्षों को नेतृत्व दिया है।

अब 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' नगर निगम चुनावों में करावलनगर, वज़ीरपुर व खजूरी से अपने उम्मीदवार खड़ा कर

## फासीवादियों का प्रचार तन्त्र

फासीवाद साम्राज्यवाद के युग में संकट की उपज होता है। संकट कालीन परिस्थिति में बौखलाया पूँजीपति वर्ग फासीवाद को चुनता है। भारत में फासीवाद सत्ता में आने के बाद लगातार बड़ी पूँजी के हितों में मेहनतकश जनता के ऊपर तानाशाहना नीतियों को थोपने में लगा है। फासीवाद अपने जबरदस्त विराट प्रचार तन्त्र के जरिये इन कुकर्मों को अंजाम देता है। फासीवाद विशिष्ट किस्म का बुर्जुआ वर्ग का प्रतिक्रियावाद होता है जिसे निम्न पूँजीवादी वर्ग, सफ़ेद कॉलर मज़दूर और लम्पट सर्वहारा के प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन के रूप में समझा जा सकता है। इसकी जीत को चुनाव में मापना बेवकूफी होगी। हमने मज़दूर बिगुल के पन्नों पर बार-बार बात रखते हुए दोहराया था कि फासीवाद को चुनाव के जरिये हराया नहीं जा सकता है। परन्तु भारत के तमाम संशोधनवादी और प्रगतिशील दायरे के लोग व जनता का एक हिस्सा अभी भी यह सोचता है कि संविधान व जनवाद के जरिये फासीवाद को रोका जा सकता है। खैर इन्हें 2017 में मोदी और उसके फासीवादी गिरोह ने एक बार फिर गलत साबित किया है। यूपी के चुनाव में मायावती और अखिलेश पर सट्टा लगाकर बैठे उदारतावादी कलमघसीट और फ़ेसबुक क्रान्तिकारियों की नींद उड़ गयी है और वे मोदी की जीत के बाद अपनी त्रासदी की जिम्मेदारी का आरोप जनता के ऊपर मढ़ने लगे हैं कि भारत की जनता का कुछ नहीं हो सकता है। दरअसल ये 'समझदार' फासीवाद के उभार की जिम्मेदारी पूरी तरह से जनता पर डाल देते हैं और फासीवाद को इतिहास में चूक की तरह से पेश करने वालों की फ़ेहरिस्त में शामिल हो जाते हैं जो अपनी निष्क्रियता और फासीवाद की कार्यप्रणाली को न समझ पाने की ऐतिहासिक मूर्खता का जिम्मा जनता के सर पर डाल देते हैं। तो कुछ ऐसे हैं जो मोदी की जीत को स्वीकार ही नहीं कर रहे हैं और इसका इन्होंने भाजपा की जीत का जिम्मा ईवीएम में घपले पर डाल दिया है। यह भी इस बात को मानने से इंकार कर देते हैं कि इतिहास के ख़ास मोड़ पर फासीवादी आन्दोलन जन्म लेता है और सत्तासीन होता है। ये 'समझदार' फासीवाद को पागलपन या बेवकूफी कहकर फासीवाद की परिघटना को समझ से परे बना देते हैं। जर्मनी के हिटलर के सत्तासीन होने को भी कई इतिहासकार एक अबुझ परिघटना बनाकर पेश करते थे। लेकिन जैसा हमने बताया कि यह 2004 से चली आ रही कहानी है कि मात्र चुनाव के जरिये राजनीति को मापने वाले लोगों ने

2004 में भाजपा की लोकसभा में हार का मतलब निकालते हुए फासीवाद को हारा हुआ मान लिया था और 2017 तक इनका यही हाल है कि ये लोग इसका ठीकरा या तो इवीएम पर फोड़ देते हैं या ग़रीब जनता की अज्ञानता पर। दोनों ही सूरत में ये अपनी निष्क्रियता और बौद्धिक दिवालियेपन पर और फासीवाद की कार्यनीति और ढाँचे पर सवाल नहीं उठाते हैं। हम यहाँ फिर से यह नहीं बतायेंगे कि फासीवाद क्या है, बल्कि हम यहाँ इस बात के एक महत्वपूर्ण हिस्से पर अपनी बात को केन्द्रित करेंगे। हमें इस बात को समझना चाहिए कि फासीवादी अपने विराट प्रचार तन्त्र के जरिये किस तरह बहुसंख्यक आबादी को अपने पक्ष में कर लेते हैं व इसके भौतिक कारण क्या हैं? हम इस लेख में फासीवाद के विराट प्रचार तन्त्र की तरफ़ ध्यान इंगित करना चाहेंगे जिससे कि यह समझा जा सके कि फासीवाद जनता की अपने पक्ष में किस तरह से सहमती बनाता है क्योंकि फासीवाद की इस प्रचार प्रणाली को मज़दूर वर्ग के हिरावल को चुनौती देनी है। फासीवाद के प्रचार का सबसे बड़ा हिस्सा मिथ्या दुश्मन को खड़ा करना होता है। यह देश की हर समस्या का ठीकरा उस दुश्मन के सर पर फोड़ता है। रेल की पटरी उतरने से लेकर नक़ली नोट छपने और देश में बेरोज़गारी के जिम्मेदार कहीं न कहीं से पड़ोसी देश के लोग या देशद्रोही क्रार दिये जाते हैं और इनकी और इनके सहयोगियों की तस्वीर के रूप में मुसलमान, कम्युनिस्ट और सेक्युलर को भरा जाता है। यह सिर्फ़ मोदी की ही नहीं सभी फासीवादियों की नीति रही है। इस प्रचार तन्त्र को समझना होगा जिससे कि यह तस्वीर पेश की जाती है और दूसरा उन कारणों की पड़ताल करनी होगी जिसकी वजह से यह प्रचार लोगों पर असर करता है। फासीवादियों के प्रचार को तीन हिस्से में बाँटकर समझा जा सकता है - प्रचार की मशीनरी, प्रचार का सारतत्व, प्रचार के उपकरण। इसे तीन हिस्से में इसलिए ही बाँटा है ताकि यह समझा जा सके कि यह किस तरह काम करता है। सबसे पहले हम फासीवादी प्रचार मशीनरी को जाँच लें। प्रचार की मशीनरी का अर्थ है कि जनता के अलग वर्ग संस्तरों के बीच फासीवादी कहाँ-कहाँ मौजूद होते हैं। दरअसल आज फासीवादियों ने सत्ता के हर अंग-उपांग के साथ-साथ जनता की रिहाइश के कोने-कोने तक अपनी पकड़ स्थापित की है। संघ की देश में लग रही करीब 50000 शाखाएँ, भारतीय मज़दूर संघ, सरस्वती शिशु मन्दिर जहाँ बचपन से ही हिन्दू संस्कृति की महानता के बीज बोये जाते हैं, भारतीय किसान संघ, बजरंग दल में संगठित लम्पट तत्व, दुर्गा वाहिनी, विश्व

हिन्दू परिषद, विवेकानन्द इण्टरनेशनल फ़ाउण्डेशन जिसमें अजित डोभाल सरीखे ब्यूरोक्रेट और सेना के अधिकारी शामिल हैं, वनवासी कल्याण आश्रम, मुस्लिम राष्ट्रीय मंच आदि वे संगठन हैं जो लगातार फासीवादी विचारों का प्रचार-प्रसार करते हुए जनता के तमाम संस्तरों के बीच मौजूद हैं। ये संस्थाएँ धार्मिक मेलों के जरिये त्योहारों पर कार्यक्रम, झुगियाँ बस्तियों में चौकियाँ लगाने के धार्मिक कार्यक्रम साल भर करती हैं। फासीवादी तकनोलोजी का इस्तेमाल करने में भी अक्ल होते हैं, गोएबल्स से सीख लेते हुए आज ये लोग टेलीविजन पर मीडिया के बड़े हिस्से में अपना प्रभुत्व कायम करे बैठे हैं। अखबारों के जरिये लगातार मोदी का चेहरा, पेट्रोल पम्पों और बस स्टॉप से लेकर तमाम बसों पर मोदी और भाजपा के नारे सबसे अधिक चमकते हैं। फ़िल्मों में संघ की विचारधारा को घोल कर पेश किया जाता है, 'बजरंगी भाईजान' और 'ज़ोर लगाकर हईसा' व तमाम फ़िल्मों में सीधे संघ की तारीफ़ आ जाती है। रडियो पर 'मन की बात' के जरिये व्यवस्थित प्रचार करने में भी ये अक्ल हैं। सोशल मीडिया के हर रूप में यानी फ़ेसबुक, ट्विटर और व्हाट्सपप के विराट तन्त्र का भी ये इस समय अधिकतम इस्तेमाल कर रहे हैं। अफ़वाह फैलाने में और अपने प्रचार को लगातार इन माध्यमों से लोगों तक संघ के तमाम हिस्सों द्वारा पहुँचाया जा रहा है। इस बीच में मोदी द्वारा किये गये सर्जिकल स्ट्राइक और नोटबन्दी का प्रचार (जिसके असफल होने पर यह प्रचार नहीं किया गया), देशद्रोहियों के खिलाफ़ प्रचार जारी रहता है। चुनाव प्रचार में इन माध्यमों के इस्तेमाल के साथ सैकड़ों बाईकों, ट्रकों द्वारा रैलियाँ, बड़ी-बड़ी सभाएँ और रोड शो जिसमें कि अन्य चुनावबाज़ पार्टियों को भाजपा ने पीछे छोड़ दिया है। प्रचार में अगर महज़ खोखले चुनावी वायदों की बात होती तो यहाँ यह बात करने का ज़्यादा मतलब नहीं होता क्योंकि कांग्रेस भी नर्म हिन्दू कार्ड और दंगों की राजनीति करती आयी है, फिर भाजपा के फासीवादी प्रचार और कांग्रेस के प्रचार में अन्तर क्या हुआ? इसके लिए हमें फासीवादी प्रचार को समझना होगा। फासीवादी प्रचार में सबसे प्रमुख बात होती है कि यह हर-हमेशा एक मिथ्या शत्रु को खड़ा करता है जिसे हर मुसीबत के लिए दोषी करार दिया जाता है। देश में भुखमरी, ग़रीबी, बेरोज़गारी के लिए इस मिथ्या शत्रु को जिम्मेदार ठहराया जाता है। इसके लिए फासीवाद को एक राजनीतिक अन्धभक्ति पैदा करनी होती है जिससे जीवन की कठिन सच्चाइयों पर पर्दा पड़ा रहे। यह अन्धभक्ति जर्मनी में नाज़ियों ने आर्यन नस्ल की श्रेष्ठता और यहूदियों से नफ़रत के

रूप में दी तो भारत में यह मुसलमान विरोध और हिन्दू होने के गर्व करने पर दी जाती है। दरअसल फासीवाद की विचारधारा का कोई सैद्धान्तिक आधार नहीं होता है बल्कि यह चरम व्यवहारवाद और चरम अवसरवाद को मानती है। यही कारण है कि इस किस्म का प्रचार अलग-अलग किस्म के सामाजिक असन्तोषों को, जो एक-दूसरे के विरोधी होते हैं, उन्हें अपने अन्दर समेट लेती है। जिस मिथ्या या कल्पना जगत का निर्माण किया जाता है, जिसे 'अच्छे दिन' या 'रामराज्य' कहा जा सकता है उसमें यह अन्तरविरोध धूमिल हो जाते हैं, वहीं मिथ्या शत्रु पर सारा गुस्सा निकला जा सकता है जिसके कारण सभी समस्याएँ हैं। इस मिथ्या चेतना का निर्माण करना और अन्धभक्ति पैदा करना फासीवादियों के प्रचार की आम नीति होती है। इस आम बात के बाद हम कुछ और विशिष्ट बातें इस प्रचार में देख सकते हैं कि अक्सर फासीवाद प्रचारक अन्धभक्ति को स्थापित करने में सफल कैसे हो पाते हैं। पहली बात तो यह कि मोदी से लेकर हिटलर या किसी भी प्रचारक की बात में अक्सर लोगों की राजनीति से इतर उनकी निजी ज़िन्दगी से जुड़ी बात अधिकतम होती है जिसमें उनकी छोटी-छोटी ज़रूरतों की बात की जाती है और प्रचारक भी अपनी निजी ज़िन्दगी की बातें साज़ा करता है। मोदी द्वारा अपने बारे में संन्यासी होने, व्यक्तिगत गाड़ी न होने, घरबार सब कुछ छोड़ देने की बात बार-बार भाषणों में और प्रचारों में आती है और वहीं मोदी राजनीतिक भाषण के बड़े हिस्से में घरों में महिलाओं द्वारा रोटी संकते वक्त हाथ जल जाने की बात सरीखी निजी बातें करता है। फासीवादी प्रचार में इस किस्म के निजी प्रचार की अहम भूमिका होती है। इससे हर हमेशा फासीवादी रिश्ता स्थापित करता है जिससे कि आगे कि बातों को पेश कर सके। दूसरी बात फासीवादी प्रचार ही लक्ष्य का काम करता है। उदाहरण के तौर पर स्किल इण्डिया, परिवर्तन यात्रा, तिरंगा यात्रा आदि के जरिये प्रचार अन्ततः मक्रसद बन जाता है। बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, स्वच्छ भारत, स्किल इण्डिया से लेकर गंगा की सफ़ाई का अभियान महज़ प्रचारित किया गया और इसमें से कुछ भी ज़मीनी स्तर पर नहीं हुआ। पूँजीपति वर्ग के लिए उठाये क्रदमों को भी बिलकुल उलट कर लोगों को अलग आख्यान पेश किया जाता है चाहे यह नोटबन्दी को काला धन रोकने, डिजिटल इण्डिया बनाने के रूप में प्रचारित किया गया। श्रम कानूनों में बदलाव को मज़दूरों के लिए सुधार के रूप में पेश किया जाता है और बजट में पूँजीपतियों के लिए खुली गंगी लूट को ग़रीबों का बजट बनाकर पेश किया जाता है। जनता

को प्रचार से इस क्रदर ढँक दिया जाता है कि उसके अन्त तक यानी 'रामराज्य' या 'अच्छे दिन' तक जाने की जगह 'रामराज्य' को पाने के लिए चलने वाली कवायदें ही असल मक्रसद बन जाती है। तीसरी बात पूरे फासीवादी प्रचार में कुछ उपकरण गढ़े जाते हैं जिनका इस्तेमाल नीचे से लेकर ऊपर तक हर प्रचारक अनगिनत बार करता है। यह दोहराव ही मिथ्या को सच्चाई में तब्दील करने की ज़मीन तैयार करता है। देशद्रोही की परिभाषा गढ़ी जाती है जिसमें गाय के हत्यारे, पाकिस्तान के समर्थक, शान्ति के सन्देश देने वाले, भारत के टुकड़े-टुकड़े करने वाले लोगों को तमाम तस्वीरों के जरिये, कुछ वीडियो के जरिये लगातार जनता के बीच प्रचारित किया जाता है और अपने हर दुश्मन को ऊपर बनाये गये दुश्मन से जोड़ने के प्रयास किये जाते हैं। कैराना को छोटा पाकिस्तान बोलना, जेएनयू को देशद्रोहियों का गढ़ बोलना एक किस्म का ही प्रचार है जिसमें फासीवाद अपने दुश्मनों के बारे में गढ़ता है। साथ ही जब भी इस मिथ्या दुश्मन के बारे में बात की जाती है तो अक्सर उसके सफ़ाए की, खून से भारत माता को पवित्र करने के नारे दिये जाते हैं। इन भाषणों में प्रयोग की गयी भाषा में दुश्मन को उस तरह ही नेस्तनाबूत किया जाता है जैसा सनी देओल अपनी फ़िल्मों में अकेला गुण्डों से लड़ जाता है और इसे देखकर जिस तरह एक मध्य वर्गीय व्यक्तित्व का गुस्सा निकलता है फासीवादियों के भाषण में भी उसका गुस्सा इस रूप में निकलता है। इस प्रचार में ठोस राजनीतिक व आर्थिक कार्यक्रम पूरी तरह गायब रहता है और कोई चाहे भी तो इस प्रचार को तार्किक तरह से जोड़ नहीं सकता है परन्तु फिर भी इसे तार्किक रूप से गढ़ा जाता है। प्रचार तन्त्र के ये अलग अंग हैं जिन्हें यहाँ हमने बेहद संक्षिप्त रूप में पेश किया है। इनकी समझदारी हासिल कर ही हम इस प्रचार की काट कर सकते हैं। लेकिन प्रचार के तन्त्र को जान लेने से यह बात अभी भी अधूरी रह जाती है कि जनता के अलग संस्तरों में लोगों पर क्यों इस प्रचार का असर पड़ता है व जनता क्यों इस प्रचार के पीछे चल पड़ती है। इसका कारण हमें भारत की उत्तर औपनिवेशिक ज़मीन में ढँढ़ना होगा जहाँ रूढ़ीवाद और पुरातनपन्थ जन मानस पर हावी रहा है। भारत जैसी सांस्कृतिक ज़मीन फासीवाद के इस प्रचार के लिए अनुकूलतम है। फासीवादी प्रचार किस प्रकार भारत की ज़मीन के लिए अनुकूलतम है और कौन से वर्ग इस प्रचार से सबसे अधिक प्रभावित होते हैं व इसके कारण क्या हैं यह हम अगले अंक में विस्तारपूर्वक लिखेंगे।

## क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा को दिल्ली नगर निगम चुनावों में करावलनगर, खजूरी व वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र में समर्थन दें!

(पेज 6 से आगे)

रहा है। अब चुनावों में मज़दूरों और मेहनतकशों का स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष मौजूद है और धन्यासेदों-अमीरज़ादों की इस या उस पार्टी को वोट देने या 'नोटा' का बटन दबाने की उनकी कोई मजबूरी नहीं है। 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' की प्रवक्ता शिवानी ने कहा, "मज़दूरों और मेहनतकशों को अब सरमायेदारों की पार्टियों को वोट देने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सच है कि पूँजीवादी चुनाव ही अपने आप में मज़दूर वर्ग के ऐतिहासिक कार्यभारों को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

समूची आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में आमूलगामी व क्रान्तिकारी बदलाव के बिना हमें बेरोज़गारी, भूख, महँगाई से स्थायी तौर पर निजात नहीं मिल सकती है। लेकिन पूँजीवादी चुनावों में मज़दूर वर्ग का स्वतन्त्र राजनीतिक पक्ष अनुपस्थित रहने के कारण समाज में जारी वर्ग संघर्ष में मज़दूर वर्ग कमज़ोर पड़ता है, वह पूँजीपति वर्ग का पिछलगू बनता है और साथ ही वह अपने उन अधिकारों को भी नहीं हासिल कर पाता है जिन्हें पूँजीवादी व्यवस्था के दायरे के भीतर हासिल

किया जा सकता है जैसे कि आठ घण्टे का कार्यदिवस, न्यूनतम मज़दूरी, आवास का अधिकार आदि। इन हक़ों को सुनिश्चित करने के लिए 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' की ओर से मज़दूर वर्ग के स्वतन्त्र पक्ष को पेश करने की एक शुरुआत की जा रही है। अभी हम तीन वॉर्डों में अपने प्रतिनिधियों को उम्मीदवार के तौर पर खड़ा कर रहे हैं और आने वाले समय में विधानसभा और संसदीय चुनावों में भी इस काम को अंजाम दिया जायेगा। मैं मज़दूर भाइयों और बहनों से, मेहनतकश वर्गों, निम्न मध्यवर्ग

के अपने तमाम भाइयों व बहनों का आह्वान करती हूँ कि इन तीनों वॉर्डों पर इस बार दिल्ली नगर निगम चुनावों में मालिकों, ठेकेदारों, व्यापारियों की पूँजीवादी पार्टियों कांग्रेस, भाजपा, आप या स्वराज अभियान आदि को समर्थन न दें, बल्कि अपने पक्ष को मज़बूत बनायें। समाज में हमारी आवाज़ स्वतन्त्र तौर पर बुलन्द हो इसके लिए 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' को अपना समर्थन दें और मज़दूर वर्ग की आवाज़ को दिल्ली नगर निगम तक पहुँचाएँ! यही आपका सच्चा प्रतिनिधि है, यही आपका अपना

पक्ष है!" इन तीनों वॉर्डों में मज़दूर व युवा राजनीतिक कार्यकर्ताओं ने सघन जनसम्पर्क अभियान शुरू कर दिया है। यह मज़दूर पक्ष के लिए एक कठिन चुनौती है कि वह किस प्रकार इन चुनावों में पूँजीवादी पार्टियों के धनबल, बाहुबल, मीडिया और भ्रष्टाचार का मुकाबला करता है। इसके लिए निश्चित तौर पर मज़दूरों और मेहनतकशों को एकजुट होकर 'क्रान्तिकारी मज़दूर मोर्चा' का समर्थन करना होगा।

# एक जुझारू प्रगतिशील सामाजिक आन्दोलन खड़ा करने की तैयारियों में लगना होगा!

(पेज 1 से आगे)

ही इनकी ताकत लगातार बढ़ती रही है। पिछले ढाई-तीन दशकों के दौरान व्यवस्था का संकट एक ढाँचागत संकट बन जाने के साथ ही इनकी ताकत तेजी से बढ़ी है।

रामजन्मभूमि का ताला खुलने और बाबरी मस्जिद के से शुरू हुई प्रक्रिया की तार्किक परिणति 2002 के गुजरात दंगों में हुई। यह प्रक्रिया लगातार जारी है। संघ परिवार सत्ता में रहे या न रहे उसके संगठन सुनियोजित तरीके से समाज में नफ़रत और झूठ का जहर फैलाने में लगातार सक्रिय रहते हैं। मोदी के सत्ता में आने के बाद उन्हें भारी ताकत मिल गयी है। बड़े कारपोरेट घरानों के साथ साँठ-गाँठ की बदौलत मीडिया को पूरी तरह अपना भोंपू बना दिया गया है और अन्धाधुन्ध प्रचार के जरिए लोगों को एक झूठी चेतना देने में वे सफल रहे हैं। हिटलर का प्रचार मंत्री गोयबेल्स कहता था कि एक झूठ को सौ बार ज़ोर-ज़ोर से बोलो तो वह सच हो जाता है। आज उनके पास पास इस काम के लिए पहले से अधिक उन्नत हथियार मौजूद हैं। बार-बार, बार-बार अनक तरीकों से झूठे तर्कों और लुभावने नारों को गरीबों के दिमाग में बैठा दिया जाता है। यहाँ तक नोटबन्दी जैसे गरीबों को भारी नुकसान पहुँचाने वाले फ़ैसलों के बारे में भी उनकी एक बड़ी आबादी को यह समझा दिया गया कि अभी इससे भले ही हमारा कुछ नुकसान हो रहा है लेकिन ज़्यादा नुकसान तो अमीरों का हुआ है और आगे चलकर हमें फ़ायदा होगा।

लोगों को छलावा देने के लिए भाजपा आर्थिक तौर पर भी कुछ लोकसंगठन कदम उठा सकती है। लेकिन यह तय है कि आने वाले दिनों में संकट और गहरायेगा। जनता पर टूटने वाले महंगाई-बेरोज़गारी के कहर को ये किसी भी तरह रोक नहीं पायेंगे। ऐसे में कभी राम मन्दिर, कभी आन्तरिक आतंकवाद, कभी सीमा पर तनाव, अन्धराष्ट्रवाद का जुनून पैदा करने जैसे हथकण्डे ही इनके काम आयेंगे। धार्मिक अल्पसंख्यकों को तरह-तरह से निशाना बनाकर जनसमुदाय के बड़े हिस्से को 'आतंक राज' के मातहत दोगम दर्जे के नागरिक जैसी स्थिति में धकेल दिया जायेगा। आदित्यनाथ के मंचों से ऐसी बातें पहले ही की जाती रही हैं कि मुसलमानों से वोट का अधिकार छीन लिया जायेगा और उन्हें दोगम दर्जे का नागरिक बना दिया जायेगा। दलितों, स्त्रियों और तमाम वंचित समुदायों का उत्पीड़न और बढ़ेगा। गुजरात में 2002 के नरसंहार के बाद दंगे नहीं हुए क्योंकि अब इसकी ज़रूरत ही नहीं थी। वहाँ अल्पसंख्यकों को बुरी तरह दबाकर, आतंकित करके, कोने में धकेलकर उनकी स्थिति बिल्कुल दोगम दर्जे की बना दी गयी है। यही 'गुजरात मॉडल' उत्तर प्रदेश में लागू करने की कोशिश की जायेगी। संघ परिवार की विचारधारा में दलितों

और स्त्रियों विरुद्ध जैसा विष भरा हुआ है उसका खुला प्रदर्शन समय-समय पर होता ही रहा है। निश्चित तौर पर आने वाले दिन गम्भीर होंगे। जनवादी अधिकारों पर हमले और तेज़ होंगे और आम जनता के लिए आवाज़ उठाने वालों को तरह-तरह से बदनाम करने और निशाना बनाने की कार्यवाइयाँ बढ़ती जायेंगी।

फासीवादी उभार के लिए उन संशोधनवादियों, संसदमार्गी नकली कम्युनिस्टों और सामाजिक जनवादियों को इतिहास कभी नहीं माफ़ कर सकता, जिन्होंने पिछले कई दशकों के दौरान मात्र आर्थिक संघर्षों और संसदीय विभ्रमों में उलझाकर मजदूर वर्ग की वर्गचेतना को कुण्ठित करने का काम किया। ये संशोधनवादी फासीवाद-विरोधी संघर्ष को मात्रा चुनावी हार-जीत के रूप में ही प्रस्तुत करते रहे, या फिर सड़कों पर बस कुछ प्रतीकात्मक विरोध-प्रदर्शनों तक सीमित रहे। अतीत में भी इनके सामाजिक जनवादी, काउत्स्कीपंथी पूर्वजों ने यही महापाप किया था। दरअसल ये संशोधनवादी आज फासीवाद का जुझारू और कारगर विरोध कर ही नहीं सकते, क्योंकि ये "मानवीय चेहरे" वाले नवउदारवाद का और कीन्सियाई नुस्खों वाले "कल्याणकारी राज्य" का विकल्प ही सुझाते हैं। आज पूँजीवादी ढाँचे में चूँकि इस विकल्प की सम्भावनाएँ बहुत कम हो गयी हैं, इसलिए पूँजीवाद के लिए भी ये संशोधनवादी काफी हद तक अप्रासंगिक हो गये हैं। बस इनकी एक ही भूमिका रह गयी है कि ये मजदूर वर्ग को अर्थवाद और संसदवाद के दायरे में कैद रखकर उसकी वर्गचेतना को कुण्ठित करते रहें और वह काम ये करते रहेंगे। जब फासीवादी आतंक चरम पर होगा तो ये संशोधनवादी चुप्पी साधकर बैठ जायेंगे। अतीत में भी बाबरी मस्जिद गिराये जाने के आगे-पीछे फैले साम्प्रदायिक उन्माद का सवाल हो या फिर गुजरात में हफ़्तों चले बर्बर नरसंहार का, ये बस संसद में गते की तलवारें भाँजते रहे और टीवी और अखबारों में बयानबाज़ियाँ करते रहे। ना इनके कलेजे में इतना दम है और ना ही इनकी ये औकात रह गयी है कि ये फासीवादी गिरोहों और लम्पटों के हुजूमों से आमने-सामने की लड़ाई लड़ने के लिए लोगों को सड़कों पर उतार सकें। इन्हीं की तर्ज़ पर कागज़ी बात बहादुरी करने वाले और सोशल मीडिया पर क्रान्ति करते रहने वाले छद्म वामपंथी बुद्धिजीवियों में से कई तो घरों में दुबक जायेंगे। आश्चर्य नहीं कि आने वाले समय में कुछ तथाकथित वाम बुद्धिजीवी चोला बदल लें।

पूँजीवादी संकट का यदि समाजवादी समाधान प्रस्तुत नहीं हो पाता तो फासीवादी समाधान सामने आता ही है। इस बात को इतिहास ने पहले कई बार साबित किया है। फासीवाद हर समस्या के तुरत-फुरत समाधान के लोकलुभावन नारों के

साथ तमाम मध्यवर्गीय जमातों, छोटे कारोबारियों, सफ़ेदपोश कर्मचारियों, छोटे उद्यमियों और मालिक किसानों को लुभाता है। उत्पादन प्रक्रिया से बाहर कर दी गयी मजदूर आबादी का एक बड़ा हिस्सा भी फासीवाद के झण्डे तले गोलबन्द हो जाता है जिसके पास वर्ग चेतना नहीं होती और जिनके जीवन की परिस्थितियों ने उनका लम्पटीकरण कर दिया होता है। निम्न मध्यवर्ग के बेरोज़गार नौजवानों और पूँजी की मार झेल रहे मजदूरों का एक हिस्सा भी अन्धाधुन्ध प्रचार के कारण मोदी जैसे नेताओं द्वारा दिखाये सपनों के असर में आ जाता है। जब कोई क्रान्तिकारी सर्वहारा नेतृत्व उसकी लोकसंगठन का पर्दाफाश करके सही विकल्प प्रस्तुत करने के लिए तैयार नहीं होता तो फासीवादियों का काम और आसान हो जाता है। आरएसएस जैसे संगठनों द्वारा लम्बे समय से किये गये प्रचार से उनको मदद मिलती है। भूलना नहीं चाहिए कि संघियों के प्रचार तंत्र का असर मजदूर बस्तियों तक में है। बड़े पैमाने पर संघ के वीडियो और ऑडियो टेप मजदूरों के मोबाइल फोन में पहुँच बना चुके हैं। बहुत-सी जगहों पर गरीबों की कालोनियों और मजदूर बस्तियों में भी संघ की शाखाएँ लग रही हैं।

फासीवाद निम्न-बुर्जुआ वर्ग का घोर प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन होता है जिसके पास एक सामाजिक आधार और काडर फ़ोर्स होती है। इसका जवाब अमन-शान्ति और मेलमिलाप के नारों से नहीं बल्कि मजदूर वर्ग और नौजवानों के जुझारू दस्तों द्वारा ही दिया जा सकता है। इस प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन के बरक्स एक जुझारू प्रगतिशील आन्दोलन खड़ा करके ही इसका मुकाबला किया जा सकता है। क्रान्तिकारी वाम की शक्तियाँ आज बिखरी हुई हैं। एक हिस्सा कठमुल्लेपन, अतिरेकपंथ और दुस्साहसवाद का शिकार है तो एक हिस्सा सच्चाइयों से आँख चुराते-चुराते वस्तुगत तौर पर अवसरवाद और बिखराव का शिकार है। जो शक्तियाँ संजीदगी से सोच रही हैं उन्हें ताकत कम या अधिक होने के बारे में नहीं सोचना चाहिए बल्कि सामने मौजूद कार्यभार की गम्भीरता को समझकर अपने आप को इस काम में झोंक देना होगा। उन्हें मजदूरों के बीच अपने आर्थिक-वैचारिक-सांस्कृतिक काम को बढ़ाते हुए मजदूरों के जुझारू दस्तों तैयार करने की शुरुआत करनी होगी। साथ ही मध्य वर्ग के जो लोग घरों में दुबक जाने वाले सेक्युलर नहीं हैं, उन्हें साथ में लेना होगा।

साम्प्रदायिक तनाव और अंधराष्ट्रवादी लहर जैसी स्थिति में राज्यसत्ता को निरंकुश स्वेच्छाचारी बना देना सुगम हो जायेगा और जनता के रहे-सहे जनवादी अधिकारों का भी कोई मतलब नहीं रह जायेगा। रक्षा तैयारियों पर भारी खर्च की आड़ लेकर जनता से मँहगाई बर्दाश्त करने

की अपील की जायेगी और जनता पेट काटकर "देशभक्ति" की कीमत चुकायेगी।

नवउदारवाद के इस दौर में पूँजीवादी व्यवस्था का संकट जैसे-जैसे गम्भीर होता जा रहा है, वैसे-वैसे दुनियाभर में फासीवादी उभार का एक नया दौर दिखायी दे रहा है। ग्रीस, स्पेन, इटली, फ्रांस और उक्रेन जैसे यूरोप के कई देशों में फासिस्ट किस्म की धुर दक्षिणपंथी पार्टियों की ताकत बढ़ रही है। अमेरिका में भी टी-पार्टी जैसी धुर दक्षिणपंथी शक्तियों का प्रभाव बढ़ रहा है। नव-नाज़ी ग्रुपों का उत्पात तो इंग्लैण्ड, जर्मनी, नार्वे जैसे देशों में भी तेज़ हो रहा है। तुर्की, इंडोनेशिया जैसे देशों में पहले से निरंकुश सत्ताएँ वफ़ायम हैं जो पूँजीपतियों के हित में जनता का कठोरता से दमन कर रही हैं। हाल के वर्षों में कई जगह ऐसी ताकतें सीधे या फिर दूसरी बुर्जुआ पार्टियों के साथ गठबन्धन में शामिल होकर सत्ता में आ चुकी हैं। जहाँ वे सत्ता में नहीं हैं, वहाँ भी बुर्जुआ जनवाद और फासीवाद के बीच की विभाजक रेखा धूमिल-सी पड़ती जा रही है और सड़कों पर फासीवादी उत्पात बढ़ता जा रहा है।

हमने पहले भी लिखा था कि भाजपा सत्ता में आये या न आये, भारत में सत्ता का निरंकुश दमनकारी होते जाना लाज़िमी है। सड़कों पर फासीवादी उत्पात बढ़ता जायेगा। फासीवाद विरोधी संघर्ष का लक्ष्य केवल भाजपा को सत्ता में आने से रोकना नहीं हो सकता। इतिहास का आज तक का यही सबक रहा है कि फासीवाद विरोधी निर्णायक संघर्ष सड़कों पर होगा और मजदूर वर्ग को क्रान्तिकारी ढंग से संगठित किये बिना, संसद में और चुनावों के जरिए फासीवाद को शिकस्त नहीं दी जा सकती। फासीवाद विरोधी संघर्ष को पूँजीवाद विरोधी संघर्ष से काटकर नहीं देखा जा सकता। पूँजीवाद के बिना फासीवाद की बात नहीं की जा सकती। फासीवाद विरोधी संघर्ष एक लम्बा संघर्ष है और उसी दृष्टि से इसकी तैयारी होनी चाहिए। अब जबकि फासिस्ट सत्ता में अपनी पकड़ लगातार मज़बूत बना रहे हैं, तो ज़ाहिर है कि हमारे सामने एक फौरी चुनौती आ खड़ी हुई है। हमें इसके लिए भी तैयार रहना होगा।

निश्चय ही फासीवादी माहौल में क्रान्तिकारी शक्तियों के प्रचार एवं संगठन के कामों का बुर्जुआ जनवादी स्पेस सिकुड़ जायेगा, लेकिन इसका दूसरा पक्ष यह होगा कि नवउदारवादी नीतियों के बेरोकटोक और तेज़ अमल तथा हर प्रतिरोध को कुचलने की कोशिशों के चलते पूँजीवादी संरचना के सभी अन्तरविरोध उग्र से उग्रतर होते चले जायेंगे। मजदूर वर्ग और समूची मेहनतकश जनता रीढ़विहीन गुलामों की तरह सबकुछ झेलती नहीं रहेगी। अन्ततोगत्वा वह सड़कों पर उतरेगी। व्यापक मजदूर उभारों की परिस्थितियाँ तैयार होंगी। यदि इन्हें नेतृत्व देने वाली

क्रान्तिकारी शक्तियाँ तैयार रहेंगी और साहस के साथ ऐसे उभारों में शामिल होकर उनकी अगुवाई अपने हाथ में लेंगी तो क्रान्तिकारी संकट की उन सम्भावित परिस्थितियों में बेहतर से बेहतर इस्तेमाल करके संघर्ष को व्यापक बनाने और सही दिशा देने का काम किया जा सकेगा। अपने देश में और पूरी दुनिया में बुर्जुआ जनवाद का क्षरण और नव फासीवादी ताकतों का उभार दूरगामी तौर पर नयी क्रान्तिकारी सम्भावनाओं के विस्फोट की दिशा में भी संकेत कर रहा है।

आने वाला समय मेहनतकश जनता और क्रान्तिकारी शक्तियों के लिए कठिन और चुनौतीपूर्ण है। हमें राज्यसत्ता के दमन का ही नहीं, सड़कों पर फासीवादी गुण्डा गिरोहों का भी सामना करने के लिए तैयार रहना पड़ेगा। रास्ता सिर्फ एक है। हमें ज़मीनी स्तर पर गरीबों और मजदूरों के बीच अपना आधार मज़बूत बनाना होगा। बिखरी हुई मजदूर आबादी को जुझारू यूनियनों में संगठित करने के अतिरिक्त उनके विभिन्न प्रकार के जनसंगठन, मंच, जुझारू स्वयंसेवक दस्ते, चैकसी दस्ते आदि तैयार करने होंगे। आज जो भी वाम जनवादी शक्तियाँ वास्तव में फासीवादी चुनौती से जूझने का जज़्बा और दमखम रखती हैं, उन्हें छोटे-छोटे मतभेद भुलाकर एकजुट हो जाना चाहिए। हमें भूलना नहीं चाहिए कि इतिहास में मजदूर वर्ग की पफौलादी मुट्ठी ने हमेशा ही फासीवाद को चकनाचूर किया है, आने वाला समय भी इसका अपवाद नहीं होगा। हमें अपनी भरपूर तावफ़त के साथ इसकी तैयारी में जुट जाना चाहिए।

2019 में भाजपा की हार की सदृच्छा में जीना या मन्त मानते हुए बैठे रहना आत्मघाती होगा। वैसे फासिस्ट सत्ता में रहें, या चले जायें, फासिस्टों का उत्पात जारी रहेगा। भारतीय पूँजीपति वर्ग जंजीर में बंधे शिकारी कुत्ते की तरह जनता को डराने और काबू में करने के लिए, मेहनतकशों और क्रान्ति के पक्ष में खड़े सभी वर्गों की एकता को तोड़ने और उनकी चेतना को भ्रष्ट करने के लिए फासीवाद का इस्तेमाल लगातार करता रहेगा। सोचने का सच्चा क्रान्तिकारी तरीका सच्चाई को पहचानकर उसके मुकाबले की तैयारी करना है। झूठी उम्मीद को विकल्प का नाम मत दीजिये। विकल्प का क्रान्तिकारी रास्ता बहुत कठिन है, लेकिन उस पर चलने के सिवा कोई और रास्ता नहीं है। इतिहास ने इस सच को भी बार-बार साबित किया है कि जनता के हिरावल जब आगे आकर शोषित-उत्पीड़ित जनसमुदाय का आह्वान करते हैं और कुछ लोगों को ही लेकर बदलाव के रास्ते पर आगे बढ़ते हैं तो लम्बा और कठिन रास्ता भी आसान लगने लगता है।

अक्टूबर क्रान्ति शतवार्षिकी समिति

# 'महान अक्टूबर क्रान्ति और इक्कीसवीं सदी की नयी समाजवादी क्रान्तियाँ : निरन्तरता और परिवर्तन के तत्व' पर नयी दिल्ली में व्याख्यान



‘अक्टूबर क्रान्ति शतवार्षिकी समिति’ के बैनर तले 21 फ़रवरी 2017 को कांस्टीट्यूशन क्लब ऑफ़ इण्डिया, नयी दिल्ली में 'महान अक्टूबर क्रान्ति और इक्कीसवीं सदी की नयी समाजवादी क्रान्तियाँ : निरन्तरता और परिवर्तन के तत्व' पर व्याख्यान आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम में राजनीतिक चिन्तक, राजनीतिक कार्यकर्ता, क्रान्तिकारी कवि और नयी अंग्रेज़ी मार्क्सवादी सैद्धान्तिक पत्रिका 'दि ऐन्विल' के सम्पादक शशि प्रकाश को बतौर वक्ता आमन्त्रित किया गया। अपनी बात की शुरुआत करते हुए शशि प्रकाश ने अतीत की क्रान्तियों के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए इतिहास के साथ आलोचनात्मक रिश्ता स्थापित करने की बात कही। उन्होंने कहा कि इतिहास हर-हमेशा निरन्तरता और परिवर्तन के तत्वों के बीच के द्वन्द्व में विकासमान रहता है और भविष्य को बदलने के लिए इतिहास के प्रति एक मार्क्सवादी नज़रिया होना अनिवार्य है। आज इतिहास का अन्त, क्रान्ति के महाख्यानों का विसर्जन, उत्तर मार्क्सवाद, उत्तर सत्य के युग के आगमन के शोरगुल के बीच मानव मुक्ति की परियोजना के प्रति अपना विश्वास बरकरार रखने के लिए क्रान्ति के विज्ञान और इतिहास की मार्क्सवादी समझ बेहद ज़रूरी है। जिनके पास भविष्य का कोई स्वपन नहीं होता, वे इतिहास को अपनी अन्तिम शरण मानकर उसके इर्द-गिर्द एक मिथिकीय आभामण्डल की पुनर्रचना करते हैं और उसी की अन्ध पूजा में जुट जाते हैं; ऐसे लोग शतुरमुर्ग की भाँति अपनी गर्दन ज़मीन में गाड़े जिन्दा रहते हैं।

आगे अपनी बात विस्तार से रखते हुए शशि प्रकाश ने कहा कि अक्टूबर क्रान्ति मानव इतिहास के एक नये युग की निर्माता क्रान्तियों में से है जिसने 20वीं सदी को एक नयी शक्ति दी, जिसकी 20वीं सदी के इतिहास रचने वाले उपादानों में से सबसे अहम भूमिका थी। आज भविष्य में परिवर्तन के लिए सबसे ज़रूरी है इतिहास में घटी क्रान्तियों के प्रासंगिक तत्वों को आत्मसात करते हुए उनके अप्रासंगिक तत्वों या कमज़ोरियों से सीखते हुए नए मार्गों की तलाश करना। 7 नवम्बर 1917 के बाद

दुनिया वैसी नहीं रह गयी थी जैसे उसके पहले थी और अक्टूबर क्रान्ति के बाद साल दर साल दुनिया इतने आमूलगामी परिवर्तनों से गुज़री जितना कि शायद ही मानव इतिहास में कभी हुए हों। साहित्यिक भाषा में कहा जाता है कि अक्टूबर क्रान्ति की तोपों के धमाके पूरी दुनिया में गूँज उठे। केवल रूस में नहीं बल्कि दुनिया भर में चल रहे वर्ग संघर्षों को एक नयी जीवनदायिनी गति मिली। 1917 से 1930 में भारत में प्रकाशित होने वाली बंगाली, मलयालम, हिन्दी पत्रिकाओं जैसे सुधा, स्वदेश, प्रताप, माधुरी आदि में वे लोग जो मार्क्सवाद को नहीं मानते थे और गाँधीवादी धारा से प्रभावित थे, वे भी रूसी क्रान्ति के बारे में, लेनिन के बारे में, सोवियत क्रान्ति के पक्ष में कविताएँ और लेख, सोवियत संघ में स्त्रियों की स्थिति, कृषि के सामूहिकीकरण, पंचवर्षीय योजनाओं के बारे में लिख रहे थे। अक्टूबर क्रान्ति के बाद न सिर्फ़ भारत बल्कि एशिया के जिन देशों में राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष चल रहे थे वहाँ के क्रान्तिकारियों ने ताशकन्द, मास्को पहुँचकर बोल्शेविकों से सम्पर्क स्थापित किया। किस प्रकार न सिर्फ़ भारत बल्कि पेरिस, बर्लिन की क्रान्तिकारी कमिटियों ने सोवियत संघ से सम्पर्क किया और बाद में उनमें से कितनी धाराएँ आकर कम्युनिस्ट आन्दोलन में शामिल हुईं, आज इसका इतिहास हमसे छुपाया जाता है। भारत में हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन के भीतर मार्क्सवाद के विचारों ने कैसे प्रवेश किया और 1928 में भगत सिंह और उनके साथियों ने फिर हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन नाम रखते हुए मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर सर्वहारा वर्ग की पार्टी बनाने की घोषणा की। ये वो चन्द घटनाएँ हैं जिनसे यह अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि सोवियत क्रान्ति ने किस प्रकार पूरे विश्व में चल रहे वर्ग संघर्षों और सीधे मार्क्सवाद के दायरे से अलग लोगों के बौद्धिक जगत पर अपना प्रभाव डाला था। सोवियत क्रान्ति ने न सिर्फ़ दुनिया भर में चल रहे राष्ट्रीय मुक्ति संघर्षों को गति प्रदान की बल्कि दुनियाभर के कम्युनिस्ट आन्दोलन में एक नयी लहर पैदा की जो कि 1919 में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के गठन के बाद और स्फूर्ति

से आगे बढ़ी। लेकिन अक्टूबर क्रान्ति की विश्व ऐतिहासिक महत्ता केवल इतने में सीमित नहीं है।

विश्व इतिहास में घटित महत्वपूर्ण घटनाएँ जैसे पुनर्जागरण, फ्रांसीसी क्रान्ति और अक्टूबर क्रान्ति मानव इतिहास की सबसे महत्वपूर्ण परिघटनाएँ हैं। ज्ञात इतिहास में जबसे वर्ग और वर्ग संघर्षों का उद्भव दिखाई देता है, निजी स्वामित्व के साथ राज्यसत्ता का अस्तित्व दिखाई देता है तबसे अक्टूबर क्रान्ति के बाद स्थापित राज्यसत्ता एकमात्र ऐसी व्यवस्था थी जहाँ बहुसंख्या का अल्पसंख्या पर अधिनायकत्व स्थापित हुआ। इससे पहले के मानव इतिहास में सभी सत्ताएँ बहुसंख्या पर अल्पसंख्या का राज थी। यह एक सर्वथा भिन्न क्रिस्म की राज्यसत्ता थी, एंगेल्स के शब्दों में इस राज्यसत्ता के भीतर राज्य के साथ अराज्य के भी तत्व थे। यह एक ऐसी राज्यसत्ता थी जिस राज्यसत्ता में अल्पसंख्या पर बहुसंख्या का अधिनायकत्व था, इसीलिए इस राज्यसत्ता को फिर किसी दूसरी राज्यसत्ता के द्वारा, दूसरे वर्ग द्वारा बलात ध्वस्त किया जाना और दूसरी राज्यसत्ता का स्थापन नहीं किया जाना था। पहली बार एक ऐसी राज्यसत्ता अस्तित्व में आयी जिसका विलोपन होना था। पहली बार मानव इतिहास में एक ऐसे वर्ग की राज्यसत्ता अस्तित्व में आयी जिसके पास निजी स्वामित्व के रूप में कुछ नहीं था और जो पूँजी का जीवन्त निषेध था। इस वर्ग की सत्ता ने पहली बार निजी स्वामित्व पर चोट की। निश्चित तौर पर समाजवाद का कार्यभार मात्र निजी स्वामित्व पर चोट करने तक सीमित नहीं था, उसे उससे आगे बढ़ना था लेकिन अपने आप में निजी स्वामित्व पर चोट एक आमूलगामी परिवर्तन था। उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व को खत्म करके सामूहिक मालिकाने की स्थापना करना इतिहास में मौजूद यूटोपिया के बरक्स एक वैज्ञानिक परिघटना थी। प्रबोधन काल से चली आ रही परिवार की संस्था और स्त्री-पुरुष समानता पर गृहयुद्ध और भुखमरी की मार झेल रहे सोवियत संघ ने मारक चोट की। 1918 की विवाह और परिवार संहिता में पहली बार स्त्री को बराबर के अधिकार दिये गये। न केवल काम करने

के अधिकार स्त्रियों को प्राप्त थे, बल्कि चूल्हे-चौखट से महिलाओं को मुक्त करने के लिए सामूहिक भोजनालयों से लेकर बड़े स्तर पर शिशु शालाओं का निर्माण भी किया गया। क्रान्ति के तुरन्त बाद समलैंगिकता को अपराध की श्रेणी से बाहर कर दिया गया था, क्योंकि मार्क्सवाद की मानक समझ के अनुसार बोल्शेविकों का मानना था कि किसी भी प्रकार के विचलनशील सेक्सुअल व्यवहार के सामाजिक-आर्थिक संरचना में कारण मौजूद होते हैं और उनको दण्ड की श्रेणी में रखकर खत्म नहीं किया जा सकता। वेश्यावृत्ति को भी अपराध की श्रेणी से बाहर निकाल दिया गया और जैसे ही समाजवाद के भीतर पहले की आर्थिक सामाजिक संरचनाओं का लोप हुआ उसी के साथ वेश्यावृत्ति का भी लोप हो गया। स्त्रियों की आज़ादी, पितृसत्तात्मक मूल्यों पर आधारित परिवार संस्था को खत्म करने के लिए अक्टूबर क्रान्ति के ठीक बाद से ही काम शुरू कर दिया गया था। वर्ग समाज के बुनियादी सामाजिक स्तम्भ यानी परिवार की मूल्य-मान्यताओं, पितृसत्तात्मक सोच पर आधारित पारिवारिक संस्था पर 1917 के 10-12 सालों में जो आघात किये गये, वे अभूतपूर्व थे। अक्टूबर क्रान्ति ने जिस वर्ग को पहली बार सत्तासीन किया, जिस प्रकार की राज्यसत्ता पहली बार अस्तित्व में आयी और जिसने वर्ग समाज के बुनियादी खम्बों पर मारक चोट की, वह अपने आप में अक्टूबर क्रान्ति के सबसे आमूलगामी महत्व को दर्शाता है। अक्टूबर क्रान्ति केवल 500 वर्ष के पूँजीवाद के विरुद्ध क्रान्ति नहीं थी, वह 5000 वर्षों के पूरे वर्ग समाज के विरुद्ध एक सतत क्रान्ति की शुरुआत का एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर थी।

सर्वहारा वर्ग की क्रान्तियों में पेरिस कम्यून, अक्टूबर क्रान्ति, 1949 की चीनी क्रान्ति और 1966-67 तक महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति शामिल है। कोई भी क्रान्ति अपने आप में शुद्ध क्रान्ति नहीं होती और क्रान्ति के विज्ञान का भी मार्क्सवादी विश्लेषण करते हुए एक सतत प्रक्रिया में पहले की क्रान्तियों से सीख लेते हुए आज नयी क्रान्तियों को जन्म दिया जाना है। अक्टूबर क्रान्ति के बाद हुए समाजवादी संक्रमण के

प्रयोगों ने जिस मंज़िल तक समाज को पहुँचाया था, उसमें निजी मालिकाने का खात्मा तो हो चुका था, लेकिन अभी भी समाज में अन्तर-वैयक्तिक असमानताएँ, जैसे कि मानसिक श्रम और शारीरिक श्रम के बीच का अन्तर, कृषि और उद्योग के बीच का अन्तर, शहर और गाँव के बीच का अन्तर बना हुआ था। इस ज़मीन पर पनपने वाले बुर्जुआ अधिकारों का अस्तित्व तब तक समाज में असमानता पैदा करता रहता है और ऐसी असमानताएँ पूँजीवादी पुनर्स्थापना के लिए जिम्मेदार साबित हो सकती हैं। इन समस्याओं का समाधान 1966-67 की महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति ने किया। लेकिन जब तक इन समस्याओं से निजात पाने का रास्ता निकला तब तक चीन में भी वर्ग शक्ति सन्तुलन पूँजीवादी पथगामियों के पक्ष में झुक गया था और माओ की मृत्यु के बाद चीन में भी बाज़ार समाजवाद के नाम पर पूँजीवाद की पुनर्स्थापना की शुरुआत हो चुकी थी। इसके बावजूद महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति एक बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण प्रयोग था जिसने अक्टूबर क्रान्ति के अनसुलझे सवालों को एजेण्डा बनाते हुए उनके समाधान ढूँढ़ने का काम अपने हाथ में लिया और बहुत हद तक उनके समाधान की दिशा खोजने का काम किया।

सर्वहारा वर्ग की क्रान्तियों में पेरिस कम्यून सर्वहारा वर्ग के हिरावल की अगुवाई में की गयी सुनिश्चित क्रान्ति नहीं थी। विशेष ऐतिहासिक परिस्थितियों में एक शहर विशेष के मज़दूरों ने एक साथ उठ खड़े होकर अपनी सामूहिक सर्जनात्मकता के बल पर कुछ ऐसी समाजवादी संस्थाओं और उपकरणों का सर्जन किया जिसने आने वाले लम्बे समय तक मनुष्यता को भविष्य की एक आम दिशा में आगे बढ़ने का मार्गदर्शन किया। लेकिन क्योंकि पेरिस कम्यून को सर्वहारा वर्ग के उन्नत चेतस तत्वों का कोई अगुआ दस्ता, उसकी कोई हिरावल पार्टी नेतृत्व नहीं दे रही थी, इसीलिए पेरिस कम्यून की यह नियति थी कि वह अल्पकालिक अवधि तक जीवित रहकर अपना जीवन समाप्त कर लेती। लेकिन अक्टूबर क्रान्ति सर्वहारा वर्ग की

# 'महान अक्टूबर क्रान्ति और इक्कीसवीं सदी की नयी समाजवादी क्रान्तियाँ : निरन्तरता और परिवर्तन के तत्व' पर व्याख्यान

(पेज 9 से आगे)

एक हिरावल पार्टी की अवधारणा लेकर आयी। उस पार्टी के नेतृत्व में जनवादी क्रान्ति होने पर जनता के मित्र वर्गों का संयुक्त मोर्चा कैसा बनेगा, समाजवादी क्रान्ति होने पर संयुक्त मोर्चा किस प्रकार बनेगा आदि प्रश्नों को अक्टूबर क्रान्ति ने न सिर्फ उठाया बल्कि हल भी किया। मार्क्स और एंगेल्स के जर्मनी के सन्दर्भ में इस सवाल पर चिन्तन के बाद, जिसमें उन्होंने कहा था कि क्रान्ति की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि किसानों का संघर्ष उसके पक्ष में कितना खड़ा होता है, किसानों का रणनीतिक मोर्चा सर्वहारा वर्ग के साथ कैसे बनेगा अक्टूबर क्रान्ति ने इस सवाल को सबसे पहले उठाया। सबसे रेडिकल तरीके से जनवादी क्रान्ति के कार्यभारों को किस प्रकार सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में पूरा करने का श्रेय भी अक्टूबर क्रान्ति को जाता है।

अक्टूबर क्रान्ति न सिर्फ सर्वहारा वर्ग की क्रान्तियों का एक मील का पत्थर है बल्कि वो लाइट हाउस है जो आने वाले समय की क्रान्तियों का पथ प्रदर्शक रही। यह एक युगान्तरकारी क्रान्ति थी। सोवियत संघ में कृषि का सामूहिकीकरण, उद्योगों का राष्ट्रीयकरण और पूरे विश्व को फासीवाद के चंगुल से छुड़ाने का श्रेय अक्टूबर क्रान्ति को जाता

है। लेकिन उसके बावजूद सोवियत संघ में पूँजीवादी पुनर्स्थापना होने के पीछे के कारणों की पड़ताल करना आज अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करणों की रचना करने के लिए बेहद ज़रूरी है। मार्क्सवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के मुताबिक उत्पादन सम्बन्ध के तीन पहलु होते हैं - पहला उत्पादन के साधनों का स्वामित्व; दूसरा, वितरण की प्रक्रिया; तीसरा, श्रम प्रक्रिया और उत्पादन प्रक्रिया। उत्पादन के साधनों के बदलाव में समाजवादी उत्पादन सम्बन्ध कोई स्थिर वस्तु नहीं है, वह एक संक्रमणकालिक व्यवस्था है जिसमें समाजवादी उत्पादन सम्बन्ध और पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्ध साथ-साथ मौजूद रहते हैं। अक्टूबर क्रान्ति ने उत्पादन के साधनों से निजी मालिकाने का अन्मूलन तो किया लेकिन पूरे उत्पादन सम्बन्ध नहीं बदले, उत्पादन सम्बन्धों के तीन पहलुओं में से एक को बदला गया। अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन और विशेष तौर पर, यूरोपीय मज़दूर आन्दोलन में हावी उत्पादक शक्तियों की प्रधानता की सोच के प्रभाव में उत्पादन के साधनों पर से निजी मालिकाने के खात्मे को पूरे उत्पादन सम्बन्धों का परिवर्तन मान लेना एक भ्रान्ति थी जबकि उत्पादन सम्बन्धों के दो और महत्वपूर्ण पहलु अभी बदलाव

से बचे रह गये थे जो कि समाजवादी ढाँचे के बीच लगातार असमानताओं को जन्म देते हुए बुर्जुआ अधिकारों को पनपने की ज़मीन मुहैया करा रहे थे। इस समझदारी के अनुसार समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों के बहाल हो जाने के बाद ज़्यादा जोर उत्पादक शक्तियों के निरन्तर विकास पर होना चाहिए और इस विकास की प्रक्रिया में उत्पादक शक्तियाँ स्वतः समाजवादी उत्पादन सम्बन्धों को उन्नत करती जायेंगी और इस प्रकार मनुष्यता उस मंजिल में पहुँच जायेगी जहाँ लोग क्षमता मुताबिक काम करेंगे और आवश्यकता मुताबिक पायेंगे। यह सोच एक प्रकार के स्वतः स्फूर्ततावाद और आर्थिक नियतत्ववाद की सोच है। 1936 में सोवियत समाज में निजी स्वामित्व के खात्मे के बाद शत्रुतापूर्ण वर्गों की माजदगी न होने की सोच एक चूक थी। उत्पादन के सम्बन्धों का निरन्तर क्रान्तिकारीकरण और अधिरचना में निरन्तर क्रान्ति की ज़रूरत को न समझ पाना दो मूल कारण थे, जिसके कारण 1953 के बाद से एक प्रक्रिया में बुर्जुआ वर्ग के नेतृत्व में राजकीय इजारेदार पूँजीवाद की स्थापना हुई।

अक्टूबर क्रान्ति के नये संस्करणों को रचने के लिए जहाँ अक्टूबर क्रान्ति की समस्याओं की समझ अनिवार्य है,

वही आज के दिक् और काल में दुनिया के पूँजीवादी समीकरण को समझना भी बेहद ज़रूरी है। आज दुनियाभर के देशों में उपनिवेश, अर्धउपनिवेशों जैसी स्थिति नहीं है और इन देशों में राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति के कार्यभार भी सम्पन्न हो चुके हैं इसीलिए आज के युग की क्रान्तियाँ चीन की नवजनवादी क्रान्ति जैसी नहीं होंगी। साथ ही, आज की क्रान्तियाँ अक्टूबर क्रान्ति की हु-ब-हु कार्बन कॉपी या नक़ल भी नहीं हो सकतीं। आज के युग की क्रान्तियाँ केवल देशी पूँजीवाद के विरुद्ध न होकर साम्राज्यवाद विरोधी और पूँजीवाद विरोधी क्रान्तियाँ होंगी। आज के दौर में पूँजीवादी राज्यसत्ता तथा इसके तमाम सामाजिक अवलम्ब पहले से कहीं ज़्यादा मज़बूत और गहरे जड़ जमाये हुए हैं। इसके अलावा, आज की साम्राज्यवाद विरोधी क्रान्तियों की रणनीति और आम रणकौशल लेनिन-कालीन साम्राज्यवाद की रणनीति और आम रणकौशल से भिन्न होंगी। इक्कीसवीं सदी की क्रान्तियाँ नयी समाजवादी क्रान्तियाँ होंगी। जिन्हें अंजाम देने के लिए आज सर्वहारा वर्ग के क्रान्तिकारी हिरावल को मुक्त चिन्तन और कठमुल्लावाद के दोनों छोरों से बचते हुए मार्क्सवाद के वैज्ञानिक अध्ययन और दृष्टिकोण का इस्तेमाल

करते हुए इतिहास में घटी क्रान्तियों से एक आलोचनात्मक सम्बन्ध स्थापित करना होगा। आज के पूँजीवादी उत्पादन सम्बन्धों और उत्पादक शक्तियों के सम्बन्ध का ठोस विश्लेषण करते हुए जनता के बीच सोवियत समाजवाद के प्रयोगों से शिक्षा लेते हुए सचेतन तौर पर सोवियत-जैसी संस्थाओं का निर्माण करना होगा। क्रान्तिकारी ताक़तों को जनता के बीच अपनी पैठ बनाकर जनदुर्गों का निर्माण भी करना होगा। जनता को लामबन्द कर आज एक व्यापक आम बगावत ही दुनिया के किसी भी देश में बुर्जुआ सत्ता को चकनाचूर कर सर्वहारा सत्ता का निर्माण कर सकती है। साथ ही आज की नयी समाजवादी क्रान्तियों में संस्कृति और कला के क्षेत्र को भी वर्ग संघर्ष का एक मंच बनाना होगा। अपने व्याख्यान का अन्त शशि प्रकाश ने लेनिन की 1905-1907 की क्रान्ति के कुचल दिये जाने के बाद लिखी कविता और स्वयं द्वारा रचित कविता के पाठ से किया।

इस कार्यक्रम में बुद्धिजीवियों, मज़दूर संगठनकर्ताओं, छात्रों, युवाओं, पत्रकारों, नागरिकों आदि ने अच्छी संख्या में शिरकत की।

- बिगुल संवाददाता

## आधार : लूटतन्त्र की रक्षा के लिए जनता पर निगरानी और नियन्त्रण का औज़ार

(पेज 16 से आगे)

आधार सत्यापन और सूचना प्राप्त करने की सुविधा प्रदान कर रही है तो इन सब को मौक़ा है कि वह हमारी जानकारी-सहमति के बग़ैर इसे एकत्र कर इसका दुरुपयोग करें। इसमें किसी व्यक्ति के नाम पर सिम कार्ड लेने, खाता खोलने से लेकर कोई भी आपराधिक गतिविधि शामिल हो सकती है, जिसका नतीजा बाद में निर्दोष व्यक्ति को भुगतना पड़े। दूसरे, इन जानकारीयों का इस्तेमाल बहुत सारे लोगों के स्थान पर इन गिरोहों द्वारा विभिन्न सार्वजनिक योजनाओं का लाभ चोरी से लेने में भी किया जा सकता है।

आधार डाटा के असुरक्षित होने से भी ज़्यादा खतरनाक है कि आधार अथॉरिटी अब कुछ निजी कम्पनियों को इस पर आधारित नये कारोबारी तकनीकी मॉडल बनाने में मदद कर रही है। जैसे इण्डिया स्टैक नामक कम्पनी का दावा है कि वह हाई रेसोल्यूशन कैमरा से बायोमेट्रिक पढ़ सकती है और इसके इस्तेमाल से भीड़ में से ही, यहाँ तक कि किसी वीडियो में से भी, आधार के द्वारा व्यक्ति की पहचान कर उसकी पूरी जानकारी तुरन्त मुहैया करा सकती है जिसमें उसका आधार डाटा ही नहीं, उसकी आर्थिक गतिविधियों का इतिहास, उसका पुलिस रिकॉर्ड, कारोबार-नौकरी आदि का ब्यौरा भी शामिल होगा। यह कम्पनी इस सुविधा को अब अन्य कॉर्पोरेट को बेचने का विज्ञापन कर रही है। लेकिन यह अन्दाज़ा

लगाना मुश्किल नहीं कि सरकारी एजेंसियाँ इसका इस्तेमाल नागरिकों पर निगरानी करने और राजनीतिक विरोधियों पर नियन्त्रण और दमन का शिकंजा कसने के लिए किस तरह कर सकती हैं।

### आधार, कैशलेस, डिजिटल - फासीवादी ढाँचे के अंग

अगर आधार को कैशलेस और डिजिटल के वर्तमान अभियान के साथ जोड़कर देखा जाये तो स्थिति और भी स्पष्ट होगी। मोबाइल के द्वारा हर व्यक्ति कहाँ जाता है प्रत्येक स्थान का ब्यौरा मौजूद है, डिजिटल के द्वारा उसकी हर गतिविधि - क्या खरीदा, क्या खाया, क्या किया, किससे मिला, क्या लेन-देन, सौदा किया, और उससे भी बढ़कर क्या किताब-पत्रिका पढ़ी, कौन सी वेबसाइट पर गया, कौन से विचार के लेख पसन्द-नापसन्द किये, क्या टिप्पणियाँ कीं - सब पर नज़र रखी जा सकती है। इन सब जानकारी के आधार पर उस पर दमन की नकेल ही नहीं कसी जा सकती, बल्कि इस जानकारी को ग़लत सन्दर्भों में जोड़कर उसको बदनाम करने का अभियान भी चलाया जा सकता है। ऐसी स्थिति की कल्पना कीजिए - कलकत्ता या कोचीन का कोई व्यक्ति अहमदाबाद में है और व्हाट्सप के जरिये उसके फ़ोटो और स्थान के साथ यह ख़बर फैला दी जाये कि उसने फ़्लॉ-फ़्लॉ तारीख को बीफ़ खाया/खरीदा था; नतीजा क्या होगा?

और यह कोरी कल्पना नहीं है, इस तरह की तमाम चीज़ें राजनीतिक विरोधियों और कुछ समुदायों के व्यक्तियों के बारे में आज भी ज़ोरों से फैलाई जा रही हैं, लेकिन आधार, कैशलेस और डिजिटल के मेल से जो किया जा सकेगा वह और बहुत ज़्यादा खतरनाक है।

यहाँ तक तो बात हुई व्यक्तियों के सन्दर्भ में। समूहों के सन्दर्भ में देखें तो आधार, कैशलेस और डिजिटल के मेल से सत्ताधारियों के लिए किसी भी जनसमूह के जीवन को नियन्त्रित ही नहीं पूरी तरह बाधित करने की भी शक्ति मिल जायेगी। अभी ही हम विभिन्न स्थानों पर मोबाइल या इण्टरनेट बन्द कर देने की ख़बरें पढ़ते हैं। लेकिन इसके बाद सत्ता के लिए मुमकिन होगा पूरे समूहों के तमाम सम्पर्कों को काट देना, उनके ख़ातों पर रोक लगाकर उनके साधनों से, कुछ ख़रीद पाने तक से रोक देना, अर्थात् जीवन की ज़रूरी सुविधाओं से वंचित करना। ख़ासतौर पर भारत की धर्म, जाति, आदि पूर्वाग्रहों-नफ़रत आधारित शासक वर्ग की राजनीतिक ताक़तों और उनके संरक्षण वाले गिरोहों के हाथ में ऐसे केन्द्रीय डाटा भण्डार बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं। यह भी याद रखना चाहिए कि 1984 में दिल्ली और 2002 में गुजरात दोनों जगह शासक पार्टियों ने पुलिस-प्रशासन के संरक्षण में जिन भयानक हत्याकाण्डों को अंजाम दिया था, उनमें चुन-चुनकर व्यक्तियों और उनकी सम्पत्ति को निशाना बनाया गया था और इसमें वोटर लिस्ट और

अन्य सरकारी जानकारियों का इस्तेमाल हुआ था। 1930 के दशक में यहूदियों का जनसंहार शुरू करने के पहले जर्मन नाजियों ने उन्हें भी अपना और अपनी कारोबार-सम्पत्ति का पंजीकरण कराने के लिए कहा था जिससे नाज़ी हुकूमत उनके लिए उचित व्यवस्था कर सके। बाद में इसका इस्तेमाल किस तरह किया गया, यह हम सब अच्छी तरह जानते हैं।

यहीं पर हम उच्चतम व अन्य न्यायालयों की भूमिका पर भी गौर करते हैं जिनसे बहुत से जनवादी-लिबरल ही नहीं, बल्कि वामपन्थी भी जनवादी अधिकारों की हिफ़ाज़त की उम्मीद रखते हैं। यह सच है कि उच्चतम न्यायालय ने कई बार सरकार को कहा है कि वह आधार सूचना की उचित सुरक्षा का कानून बनाये बग़ैर इसे आगे न बढ़ाये और इसे किसी भी सार्वजनिक सेवा के लिए आवश्यक न करो। लेकिन सरकार जब ऐसा करती है तो उसको रोकना तो छोड़िए, उच्चतम न्यायालय उसकी सुनवाई के लिए भी तैयार नहीं होता, अभी तक ऐसी सुनवाई नहीं हुई है। उल्टे खुद इस न्यायालय ने ही मोबाइल सिम कार्ड के लिए आधार सत्यापन को ज़रूरी करने का आदेश भी दे दिया है अर्थात् इस आधार पर सुनवाई जब होगी तब भी क्या होगा यह स्पष्ट है। जहाँ तक संसद का सवाल है उसमें तो अक्सर होने वाली फ़र्ज़ी संसदीय बहसों से भी छुटकारा पा लिया गया और आधार कानून को मनी बिल के रूप में

लोकसभा में पेश करके पास करने की रस्म अदायगी कर दी गयी। इस सबसे यह समझा जा सकता है कि वर्तमान पूँजीवादी राज्यसत्ता के किसी अंग से इसे कोई चुनौती की उम्मीद निहायत बेवकूफ़ाना होगी। संविधान और जनतन्त्र में भरोसा रखने वालों के लिए यह जानना भी बेहतर होगा कि आधार कानून के अनुसार आधार अथॉरिटी को ऐसी कोई बाध्यता नहीं है कि उसके डाटा में सेंध लगने पर वह जनता को सूचित करे या जिनका डाटा चोरी हो गया है उन्हें ही बताये। और उसे 'राष्ट्रीय सुरक्षा' का कवच भी दिया गया है जिससे सूचना अधिकार के तहत पूछने पर भी वह बताने से मना कर सकती है!

अतः इसके राजनीतिक निहितार्थ को देखें तो भारत में पहले ही पूँजीवादी शासक वर्ग फासीवाद की ओर तेज़ी से क्रम बढ़ा चुका है, जनता के जनवादी अधिकारों और अभिव्यक्ति पर तेज़ी से हमले कर रहा है, पूरे मेहनतकश वर्ग और ख़ासतौर पर अल्पसंख्यकों, आदिवासियों, दलितों और महिलाओं के अधिकारों पर शिकंजा कस रहा है। इस स्थिति में उसके आर्थिक-राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक आक्रमण के साथ आधार, कैशलेस, डिजिटल का यह अभियान उसके लिए जनता पर निगरानी और नियन्त्रण के एक सशक्त प्रशासनिक ढाँचे को खड़ा करने के जरिये के रूप में चलाया जा रहा है।

# बन्द होती सार्वजनिक क्षेत्र की दवा कम्पनियाँ : सरकार की मजबूरी या साजिश?

डॉ. नवमीत

किसी भी देश में सरकार से अपेक्षा की जाती है कि वह उस देश की जनता के पोषण, स्वास्थ्य और जीवन स्तर का खयाल रखे। सिर्फ़ भारत ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया की सरकारें लोगों के स्वास्थ्य का खयाल रखने का दिखावा करती रही हैं। लेकिन पिछले कुछ सालों से यह दिखावा भी बन्द होने लगा है। खासतौर पर 1990 के दशक के बाद से सरकारें बेशर्मी के साथ जनता के हितों को रद्दी की टोकरी में फेंकती जा रही हैं। पिछले 20 साल में तो इस बेशर्मी में सुरसा के मुँह की तरह इजाफ़ा हुआ है और यह इजाफ़ा लगातार बढ़ता जा रहा है। बहरहाल 1978 में विकसित और विकासशील देशों के बीच और साथ ही देशों के अन्दर भी, लोगों के स्वास्थ्य की असमान स्थिति के मद्देनजर सोवियत संघ के “अल्मा अता” में दुनिया के तमाम देशों की एक कांफ़्रेंस हुई थी जिसमें घोषणा की गयी थी कि यह असमान स्थिति राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक तौर पर अस्वीकार्य है, इसलिए इस कांफ़्रेंस में Health for All by 2000 AD यानी 2000 ईस्वी तक सब लोगों के लिए स्वास्थ्य उपलब्ध कराने का संकल्प लिया गया था। फिर 1981 में 34वीं विश्व स्वास्थ्य सभा यानी World Health Assembly में इस लक्ष्य को पाने के लिए “सबके लिए स्वास्थ्य” की वैश्विक रणनीति बनाई गयी थी। भारत सरकार ने भी ज़ोर-शोर से यह लक्ष्य पाने की घोषणा की थी। अभी 2017 शुरू हो चुका है और मौजूदा हालात ऐसे हैं कि यह लक्ष्य अगले 100 साल में भी पूरा होता नहीं दिख रहा। आइये देखते हैं सरकार इस लक्ष्य को पाने के लिए क्या क़दम उठा रही है।

स्वास्थ्य सेवाओं का मतलब सिर्फ़ बीमारियों से बचाव ही नहीं होता बल्कि बीमारियों का इलाज भी होता है। इलाज के लिए दवाओं की ज़रूरत होती है। सरकार ये दवाएँ या तो प्राइवेट दवा कम्पनियों से ख़रीदती है या फिर सार्वजनिक क्षेत्र की दवा कम्पनियों से। 1978 में राजस्थान में इण्डियन ड्रग्स एण्ड फ़ार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड (IDPL), और राजस्थान राज्य औद्योगिक विकास और निवेश कारपोरेशन के संयुक्त तत्वाधान में “राजस्थान ड्रग्स एण्ड फ़ार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड” (RDPL) नामक एक सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी की स्थापना की गयी थी। राजस्थान के मेडिकल और हेल्थ डिपार्टमेंट को सस्ती और अच्छी दवाएँ उपलब्ध कराने के लिए इसकी स्थापना की गयी थी ताकि गरीब जनता को सही समय पर इलाज मिल सके। 2010 में RDPL को भारत सरकार का उपक्रम बना दिया गया। यह उपक्रम गोलियाँ, कैप्सूल, पाउडर, पीने की दवा, जीवन रक्षक घोल से लेकर आँखों की दवाओं तक बनाता था और दवाओं की क्वालिटी भी बहुत अच्छी होती थी। अब केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने इन दोनों उपक्रमों यानी IDPL और

RDPL को बन्द करने का फ़ैसला लिया है। हैरानी की बात ये भी है कि RDPL के कर्मचारियों को तो इस फ़ैसले के बारे में पता ही नहीं था। 150 से ज़्यादा कर्मचारी और उनके परिवारों का भविष्य इस फ़ैसले के कारण अन्धकार में है। इनमें लगभग आधे कर्मचारियों की तो अभी भी कम से कम 20 साल से ज़्यादा की सर्विस बची हुई है। लेकिन मुद्दा सिर्फ़ इन कर्मचारियों का नहीं है। मुद्दा इस देश के लोगों को स्वास्थ्य सेवाएँ उपलब्ध कराने का भी है। केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने भारत की पहली सार्वजनिक क्षेत्र की दवा कम्पनी बंगाल कैमिकल्स एण्ड फ़ार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड और हिन्दुस्तान एण्टीबायोटिक्स लिमिटेड की अधिशेष भूमि को भी बेचने का प्रस्ताव रखा है। नीति आयोग तो पहले ही इन दोनों कम्पनियों में सरकार की हिस्सेदारी को बेचने की सिफ़ारिश कर चुका है। इसके पीछे सरकार का “तर्क” है कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को बेचने से राष्ट्रीय परिसम्पत्तियों को राष्ट्र के विकास में ज़्यादा बेहतर ढंग से लगाया जा सकेगा। इस तरह से देश की चार बड़ी सरकारी फ़ार्मास्यूटिकल कम्पनियों को ख़त्म किया जा रहा है और वह भी विकास के नाम पर। राजस्थान ड्रग्स एण्ड फ़ार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड का ही उदाहरण ले लीजिए। 2013 तक यह एक कमाई करने वाली कम्पनी थी। लेकिन अब 3 साल में ही यह घाटे की कम्पनी बन चुकी है। कम्पनी के कर्मचारी कहते हैं कि वे काम करना चाहते हैं और मेहनत की जाये तो कम्पनी को अभी भी सँभाला जा सकता है। इसके लिए सरकार के पास प्रस्ताव भी अनेक बार भेजा जा चुका है लेकिन सरकार इसको बन्द करने की ज़िद पर अड़ी हुई है। और बात सिर्फ़ मुनाफ़े की नहीं है, असल में बात जनता के स्वास्थ्य से जुड़ी हुई है लेकिन सरकार को जनता से मतलब था ही कब जो अब होगा?

बहरहाल 2013-14 से कम्पनी घाटे में चल रही है। कर्मचारियों को पिछले कई महीनों से तनख़्वाह तक नहीं दी गयी है। अब सवाल ये उठता है कि 2013 तक मुनाफ़े में चल रही यह कम्पनी एकाएक घाटे में क्यों चली गयी? ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि खुद सरकार ने इस कम्पनी को माल के लिए ऑर्डर देने बन्द कर दिये। 1998 में राज्य सरकार ने फ़ैसला लिया था कि सरकारी अस्पतालों के लिए दवाएँ सिर्फ़ सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनियों से ही ख़रीदी जायेंगी। इसमें भी RDPL को वरीयता दी गयी थी क्योंकि इसमें खुद राज्य सरकार की हिस्सेदारी थी। उसके बाद से राज्य सरकार की तरफ़ से हर साल 30 से 40 रुपये के ऑर्डर इस यूनिट को मिलते आ रहे थे। 2011 में राजस्थान सरकार ने “राजस्थान मेडिकल सर्विस कारपोरेशन लिमिटेड” के नाम से एक नोडल एजेंसी बनाई थी, और इसके बाद से RDPL से दवाएँ ख़रीदना बन्द कर दिया गया और कारपोरेशन अन्य जगहों से, यहाँ तक कि प्राइवेट कम्पनियों से भी, दवाएँ ख़रीदने लगा। इस तरह से

RDPL लगातार घाटे में आती चली गयी। यह वह कम्पनी है जो किसी समय अपनी दवाओं की गुणवत्ता के लिए जानी जाती थी। इसके अलावा कम्पनी के पास 9 एकड़ अतिरिक्त ज़मीन भी थी जो भविष्य में इसके विस्तार के लिए काम आनी थी। लेकिन अब कम्पनी के पास ऑर्डर ही नहीं हैं। जहाँ 2011-12 में कम्पनी को 25 करोड़ के ऑर्डर मिले थे, वहीं 2014-15 में यह 3 करोड़ रह गया। और अब पिछले साल से तो कम्पनी को ऑर्डर ही नहीं मिला है। कर्मचारी यूनियन के अलावा अनुसूचित जाति और जनजाति वेलफ़ेयर कर्मचारी एसोसिएशन ने भी राज्य और केन्द्र सरकार से अनेक बार अनुरोध किया है कि वे दवाओं की ख़रीद सम्बन्धी अपनी पुरानी नीति को दोबारा लागू करें, लेकिन सरकारों के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भी इस कम्पनी को फ़ण्ड देने की घोषणा की थी और कम्पनी ने भी विश्व स्वास्थ्य संगठन की पॉलिसी के तहत काम शुरू कर लिया था कि एकाएक सरकार ने कम्पनी को ही बन्द करने का प्रस्ताव रख दिया।

गत दिसम्बर में कम्पनी को चलाने वाली पाँच सदस्यीय कमेटी ने केन्द्र सरकार से माँग की थी कि कम्पनी को फ़ण्ड्स की तुरन्त ज़रूरत है ताकि कर्मचारियों को तनख़्वाहें दी जा सकें। लेकिन सरकार ने इस माँग को अनसुना कर दिया। पूँजीपतियों और कॉर्पोरेट को छींक आने पर भी पैकेज, लोन और अनुदान देनी वाली सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के इस उपक्रम को कुछ भी देना मुनासिब नहीं समझा। एक तरफ़ तो कम्पनी के कर्मचारियों की नौकरी ख़तरे में है और दूसरी तरफ़ देश की जनता को मिलने वाली सस्ती दवाओं के बन्द होने का संकट। और हमारी सरकारें इस फ़िराक़ में हैं कि किस तरह से पूँजीपतियों के तलवों को ज़्यादा अच्छे से चाट कर साफ़ किया जा सके।

केन्द्र सरकार के फ़ार्मास्यूटिकल्स डिपार्टमेंट की 2015-16 की रिपोर्ट में बताया गया है कि डिपार्टमेंट के अधीन काम करने वाले सार्वजनिक क्षेत्र के पाँच उपक्रमों में से IDPL, HAL और BCPL बहुत बुरी हालत में हैं और इनको पैकेज देने की ज़रूरत है। वहीं RDPL को पहली बार 2013-14 में घाटे का सामना करना पड़ा है। पाँचों में से कर्नाटक एण्टीबायोटिक्स एण्ड फ़ार्मास्यूटिकल्स लिमिटेड ही एकमात्र मुनाफ़े वाला उपक्रम है। रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि RDPL का विस्तार और आधुनिकीकरण करने की ज़रूरत है। रिपोर्ट के अनुसार यह कम्पनी प्रबन्ध की गुणवत्ता के लिए जानी जाती है और इसकी लेबोरेटरी भी अच्छी तरह से सुसज्जित है। इसके अलावा कम्पनी ISO 9001:2008 सर्टिफ़िकेट और WHO-GMP सर्टिफ़िकेट प्राप्त करने के लिए भी कार्यशील है। कम्पनी अच्छी गुणवत्ता की जीवन रक्षक और अन्य दवाइयाँ बनाने के मामले में नाम कमा चुकी है। यह सिर्फ़ राज्य सरकार को ही नहीं बल्कि केन्द्र सरकार के

भी अनेक संस्थानों जैसे रेलवे और ईएसआई को दवा सप्लाई करती रही है। इसके अलावा यह केन्द्र सरकार के प्रोग्राम “जनौषधि”, जिसके तहत अच्छी क्वालिटी की जेनेरिक दवाएँ सस्ती दरों पर बनाई जानी हैं, में भी साझीदार है। जब भारत में स्वाइन फ्लू फैला था तब RDPL ही वह कम्पनी थी जिसने समय पर स्वाइन फ्लू की दवाएँ बनाई और बहुत कम क्रीमत पर सरकार को उपलब्ध करवाई थी। 2009 में जब स्वाइन फ्लू का पहला प्रकोप फैला था तब RDPL के कर्मचारियों ने कई कई शिफ़्टों में काम किया था। 1996 में जब सुरत में प्लेग फैला था तब भी इसी कम्पनी ने दवाएँ उपलब्ध करवाई थीं। लेकिन अब सरकार ने पहले तो इससे दवाएँ बनवाना बन्द कर दिया और अब इसको घाटे का सौदा कहकर बन्द करने जा रही है। क्यों? क्योंकि इस जैसी कम्पनियों के चलने से प्राइवेट कम्पनियों का मुनाफ़ा कम हो जाता है।

IDPL की कहानी भी बिलकुल इसी तरह की है। किसी समय यह कम्पनी भी पूरे देश के लिए दवाएँ बनाती थी। कई बार तो यह एकमात्र कम्पनी होती थी जो किसी महामारी के समय दवाएँ उपलब्ध करवाती थी। लेकिन अब सरकार ने इसको भी ऑर्डर्स देने बन्द कर दिये हैं। इसके अलावा हिन्दुस्तान एण्टीबायोटिक्स लिमिटेड (HAL) भी ऐसी ही एक सार्वजनिक क्षेत्र की दवा कम्पनी है। इसकी नींव 1954 में पहली एण्टीबायोटिक दवा पेनिसिलिन का आविष्कार करने वाले महान वैज्ञानिक अलेक्ज़ेंडर फ़्लेमिंग ने रखी थी। तब से ही यह कम्पनी सस्ती दरों पर एण्टीबायोटिक दवाएँ बना रही है। एक प्राइवेट कम्पनी ने सिप्रोफ़्लोक्सासिन नाम की एक एण्टीबायोटिक 35 रुपये प्रति टेबलेट की दर से लांच की थी तो इस कम्पनी ने यही दवा 7 रुपये की दर से उपलब्ध करवाई थी। सार्वजनिक क्षेत्र की यह एकमात्र कम्पनी है जिसने एक सर्वथा नयी दवा हैमार्सिन की खोज की है। 1996 से पहले यह कम्पनी भी सरकारी अस्पतालों को दवा सप्लाई करती थी लेकिन उसके बाद से इसके ऑर्डर भी बन्द कर दिये गये। यहाँ एक रोचक बात बताते चलें। एक बड़ी प्राइवेट दवा कम्पनी डॉ रेड्डीज़ लेबोरेट्रीज का संस्थापक कल्लम अंजी रेड्डी किसी समय IDPL में एक केमिस्ट के तौर पर काम करता था। लेकिन अब हालत ये है कि सरकारी उपेक्षा के चलते IDPL बन्द होने वाली है और डॉ रेड्डीज़ जैसी प्राइवेट कम्पनियाँ लगातार बड़ी होती जा रही हैं।

साफ़ है कि सरकार सार्वजनिक क्षेत्र की इन सब कम्पनियों को बन्द कर देना चाहती है ताकि प्राइवेट कम्पनियों से महँगी दवा ख़रीदी जा सकें। इसका बोझ करों के रूप में देश की जनता पर ही पड़ता है और दूसरा ज़रूरत के हिसाब से दवाएँ भी जनता को उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। और यह मुख्य तौर पर 1990 के दशक, जबकि भारत में नवउदारवादी नीतियों की शुरुआत की गयी थी, के

बाद से हो रहा है। जनता चाहे दवा इलाज के अभाव में मरती रहे, सरकारों का सरोकार पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े से होता है। सरकारों का हर क़दम इसी वर्ग की सेवा में उठता है। आज़ादी के समय हमारे देश का पूँजीपति वर्ग इतना काबिल नहीं था कि वह आपने दम पर इंग्रॉस्ट्रक्चर खड़ा कर सके, इसलिए स्वतन्त्र भारत में पूँजीपति वर्ग की पहली प्रतिनिधि सरकार ने उसके लिए देश की जनता के खून-पसीने से सार्वजनिक क्षेत्र खड़ा किया था, ताकि समय आने पर इस इंग्रॉस्ट्रक्चर को पूँजीपति वर्ग के हाथ में दिया जा सके। इसके अलावा दशकों पहले जब दुनिया में पूँजीवाद संकट में था, इसके किले पर लगातार प्रहार हो रहे थे और दुनियाभर की जनता अपने अधिकारों के लिए पूँजीवादी सरकारों का गला पकड़कर हिला रही थी, तब पूँजीपति वर्ग के मसीहा के तौर पर जान मेनार्ड किन्स ने कल्याणकारी राज्य का नुस्खा सुझाया था ताकि जनता के गुस्से को कुछ सुविधाएँ देकर ठण्डा किया जा सके। इस तरह से भारत में भी कल्याणकारी राज्य और सार्वजनिक क्षेत्र का झुनझुना जनता को थमाया गया था। लेकिन 1980 के दशक तक लोक कल्याणकारी नीतियों का किन्सियाई फ़ार्मूला भारत सहित पूरी दुनिया में ही फेल होने लगा और उसके बाद से ही नवउदारवाद और भूमण्डलीकरण के नाम पर पूरी दुनिया की पूँजीवादी सरकारें जनकल्याणकारी नीतियों से हाथ खींचने लगीं। अब लगातार सार्वजनिक क्षेत्र को ख़त्म किया जा रहा है और इसको पूँजीपतियों को सौंपा जा रहा है, स्वास्थ्य सेवाओं सहित अन्य सभी सरकारी सुविधाओं को प्राइवेट किया जा रहा है और यह सब विकास के नाम पर हो रहा है। भारत जैसे देशों में यह काम ज़्यादा नंगे तरीके से किया जा रहा है, सरकार बेशर्मी के साथ सार्वजनिक क्षेत्र का दिवाला निकाल रही है और फिर ओने-पौने दामों में इनको बेच रही है या फिर बन्द कर रही है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि यह पूँजीवाद की तार्किक गति है। पूँजीवाद आम जनता को सेवा या सुविधा मुहैया करवा ही नहीं सकता क्योंकि उसका आधार जनता की सुविधा पर नहीं बल्कि मुनाफ़े पर टिका होता है और यह मुनाफ़ा मेहनतकश के शोषण पर टिका होता है। जनकल्याण का वह सिर्फ़ स्वांग भर सकता है और स्वांग भी कुछ समय के ही लिए, उसके बाद उसको अपना धिनौना चेहरा दिखाना ही पड़ता है। पूँजीवाद एक कैसर है जो सिर्फ़ दुःख दे सकता है और मौत दे सकता है। कैसर का एक ही इलाज होता है कि उसको जड़ से काटकर अलग कर दिया जाये और वह भी समय रहते वरना बाद में यह लाइलाज हो जाता है और मृत्यु के साथ ही ख़त्म होता है। पूँजीवाद की बीमारी का भी यही इलाज है कि इसको जड़ से ख़त्म कर दिया जाये।

# अमरीका, यूरोप और पूरी दुनिया में पैदा हुए नस्लीय, फासीवादी उभार का कारण

अमरीका में ट्रम्प के सत्ता में आने के बाद नस्लीय हिंसा की वारदातों में इजाफ़ा हुआ है। लेख लिखे जाने तक 3 भारतीयों पर गोली चलाई जा चुकी थी, जिनमें 2 जनों की मौत हो गयी। एक भारतीय महिला तृतीया देसाई को भी वहाँ की मैट्रो में गालियाँ दी गयी और उनको अमरीका खाली करके भारत जाने को कहा गया। इन सभी अलग-अलग घटनाओं में एक चीज समान है कि जिस भारतीय की मृत्यु हुई और तृतीया देसाई आदि मोदी समर्थक रहे हैं और संघ और भाजपा के हिन्दुत्व के नफ़रत के ऐजेण्डे के प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थक रहे हैं! यानी कल तक जो दूसरों के घर को धर्म के नाम पर आग लगाने के समर्थक थे, अब उनके खुद के घर आग पहुँच गयी है। यही वो रिश्ता है जो मोदी और ट्रम्प के समर्थकों को आपस में जोड़ता है। एक ओर भारत का ख़ाया-अघाया मध्यवर्ग अपनी “स्वदेशी भारत माता” को लतियाकर ओल्ड ऐज होम में छोड़कर पहला मौक़ा मिलते ही विदेश जाकर डॉलर-पाउण्ड कूटने की फ़िराक़ में रहता है और ऐसा करते समय यह अपना स्वदेशप्रेम और राष्ट्रवाद रद्दी की टोकरी में डाल देता है व अपने देश में संघ-भाजपा की मुस्लिम अन्धविरोधी, दलित-विरोधी, मजदूर-विरोधी, वाम-विरोधी और जनद्रोही हिन्दुत्ववादी राजनीति का जमकर समर्थन करता है। जब आस्ट्रेलिया से लेकर अमरीका में जमकर पैसा पीट रहे भारतीयों की हत्या होती है तो यही चोड़ मध्यवर्ग जमकर शोर मचाता है पर अपने देश में संघी फासीवाद का जमकर समर्थन करता है। इसका एक उदाहरण संजय लीला भंसाली हैं जिन्होंने उन लेखकों के विरोध का मज़ाक़ उड़ाया था जो मोदी सरकारी के फासीवाद का विरोध कर रहे थे। उनको भी अपने धत्करमों का फल मिला जब करणी सेना ने उनको ठोक

दिया। पुरानी कहावत है कि दूसरों के लिए गढ़वा खोदने वाला अक्सर खुद उसमें गिर जाता है। दोहरे चरित्र वाले भारतीय मध्यवर्ग पर यही बात लागू होती है। जब पहले मोदी भारत में और बाद में ट्रम्प अमरीका में सत्ता में आया था तो यही वर्ग उनको सर पर उठाये घूम रहा था और अब जब ट्रम्प, जो अपनी नीतियों में मोदी जैसा है, के नस्लीय नफ़रत से सरोबर समर्थकों ने इन डॉलर-पाउण्ड कूटने वाले ख़ाये-अघाये भारतीय मध्यवर्ग की पिटाई करना शुरू कर दिया तो अब इनको बुरा लग रहा है और वहाँ बन रहे हालात ने अब इनको भी अमरीका में वहाँ की जनता के अन्य हिस्सों की तरह ही सड़क पर उतरने को मजबूर कर दिया है।

जैसा पाखण्डी मध्यवर्ग है वैसे ही पाखण्डी इसके नेता हैं। एक ओर भाजपा नेता वैक्य्या नायडू ने अमरीका में हुई इन हत्याओं के विरोध में अपनी राजनीतिक सुविधा के लिए बयान दिया है पर दूसरी ओर खुद अपने देश में सत्ता में रहते हुए तमाम संघी एक अघोषित भगवा इमरजंसी लगाये हुए हैं और जनता के प्रतिरोध को कुचलने में कोई कसर नहीं छोड़ रहे। अखलाक़ से लेकर गुरमेहर कौर तक इसके उदाहरण हैं। हमने हाल ही में देखा कि कैसे गुरमेहर कौर ने जब अपना वीडियो फेसबुक पर शेयर किया जिसमें युद्ध विरोधी व शान्ति के पक्ष में बात की गयी थी तब कैसे भाजपा के गुण्डों ने उसे बलात्कार की धमकी दी थी और सारे फ़र्जी राष्ट्रवादी कैसे इस पर शोर मचाये हुए थे।

पर अमरीका और यूरोप और साथ ही लगभग पूरी दुनिया में पैदा हो रहे इस फासीवादी उभार का कारण क्या है? वैसे तो इसके कई कारण हैं पर इसका बुनियादी कारण है मुनाफ़ा कमाकर धनी बनने की पूँजीवादी होड़। पूँजीपति वर्ग

धनी बनने के लिए आम जनता के श्रम और प्रकृति के संसाधनों को लूटता है। इस प्रक्रिया में बड़ा पूँजीपति वर्ग कई अन्य छोटे पूँजीपतियों/मालिकों को तबाह करके उनके हिस्से के बाज़ार को क़ब्ज़ाकर उनको बाज़ार से बाहर फेंक देता है। जैसे कि रिलायंस के फ़्रेश स्टोर ने कई छोटे दुकानदारों, रेहड़ीवालों को बाज़ार से खदेड़ दिया। और यही काम गाँव में होता है जैसे कि गाँव के धनी किसान अब गाँव के ग़रीब किसान को बाज़ार से बाहर खदेड़कर धनी हो रहे हैं। गाँव का धनी किसान अब कई जगह हैलीकॉप्टर में बैठकर शादी कर रहा है और जिन ग़रीब किसानों को वे बाज़ार से खदेड़ रहे हैं वे आत्महत्या कर रहे हैं। ग़रीब किसान की आत्महत्याओं का असली कारण यही है। इसके चलते शहर में बड़े पैमाने पर छोटे व्यापारी/छोटे मालिक तबाह होकर ख़स्ताहाल हो जाते हैं और गाँव के ग़रीब छोटे मालिक किसान बर्बाद हो जाते हैं। पूँजीवादी होड़ में बर्बाद होते यही वो छोटे व्यापारी/छोटे मालिकों और छोटे किसान मालिकों के तबक़े हैं जो अपनी बर्बादी व तबाही के असली कारण को नहीं समझते व फासीवाद के पैदा होने का आधार बनते हैं। साथ ही पूँजीवाद शहर व देहात के सभी बेरोज़गार लोगों को रोज़गार नहीं देता और बेरोज़गारों की रिज़र्व आर्मी बनाकर रखता है ताकि बेरोज़गारों की फ़ौज को दिखाकर वह अपने मजदूरों/कर्मचारियों से सस्ते में काम करवा सके। इसी के साथ पूँजीपति वर्ग देश में लगातार महँगाई नाम का टैक्स लगाता है ताकि उसका मुनाफ़ा बिना कुछ किये बढ़ता रहे। बेरोज़गारी व महँगाई की मार देश के मजदूर वर्ग, बर्बाद होते छोटे किसान व निम्न मध्यवर्ग पर सबसे ज़्यादा पड़ती है और ये वर्ग भी अपनी बर्बादी व तबाही के असली कारण को नहीं समझते व

किसी क्रान्तिकारी विकल्प के अभाव में फासीवाद के पक्ष में लुढ़क जाते हैं। अलबत्ता इन वर्गों को फासीवादी सत्ता में आकर कुछ नहीं देते उल्टा फासीवाद इन्हीं वर्गों का सबसे ज़्यादा नुक़सान करता है।

अगर वैश्विक पटल और देश के स्तर पर ऐसा कोई क्रान्तिकारी विकल्प ना हो तो बर्बाद होते लोगों को तब प्रतिक्रान्तिकारी शक्तियाँ बरगलाती हैं कि ‘फ़लाने धर्म या फ़लानी जाति या फ़लाने नस्ल या फ़लाने राष्ट्र के लोगों के कारण तुम तबाह हो रहे हो’। मसलन संघ-भाजपा हिन्दुओं को कहते हैं कि ‘तुम्हारा रोज़गार मुसलमान खा रहे हैं क्योंकि वे ज़्यादा बच्चे पैदा कर रहे हैं’ व यही बात अमरीकी ट्रम्प कहता कि ‘अमरीकियों के रोज़गार बाहर के देशों के लोग खा रहे हैं’! और एक क्रान्तिकारी विकल्प और अपनी बर्बादी की वैज्ञानिक समझदारी के अभाव में पूँजीवादी होड़/कम्पटीशन में बर्बाद ये तबक़े फासीवाद का साथ देते हैं। इस तरह फासीवादी दल धार्मिक/जातीय/नस्लीय/राष्ट्रीय घृणा फैलाकर आम जनता की/श्रमिकों की एकता को तोड़कर उनको आपस में लड़ा देते हैं बजाय समूचे पूँजीपति वर्ग के खिलाफ़ लड़ाने के जो कि उनकी बर्बादी की असली जड़ है और इस तरह वे किसी भी देश के बड़े पूँजीपति वर्ग के वर्गीय हितों को साधते हैं।

इसलिए आज इस फासीवादी उभार को रोकने के लिए ज़रूरी है कि भगत सिंह के आदर्शों पर चलने वाली एक ऐसी क्रान्तिकारी पार्टी बनायी जाये तो समूचे पूँजीवाद का एक क्रान्तिकारी विकल्प दे और जनता के अलग-अलग हिस्सों को समझाये कि तुम्हारे साझा दुश्मन देश व दुनिया के सारे पूँजीपति मालिक हैं और इनके खिलाफ़ एक कठोर, दृढ़, अनम्य और निर्मम वर्गयुद्ध

लड़कर ही तुम अपने तमाम हक़-हुकूक हासिल कर सकते हो।

यही अमरीका में बसे भारतीय मध्यवर्ग व अन्य देशों के लोगों को भी करना होगा। सबसे पहले उनको फासीवाद की एक वैज्ञानिक बुनियादी समझदारी बनानी होगी। उनको ये समझना होगा कि अगर वे अपने मूल देश में संघ-भाजपा या किसी अन्य शोड या रंग के (मसलन इस्लामिक चरमपन्थ या अन्य क्रिस्म के चरमपन्थ) पार्टी के फासीवाद के पक्ष में खड़े होंगे तो विदेश में उनकी कुटाई और हत्या उसकी तार्किक परिणति होगी। इसलिए उनको तमाम क्रिस्म के देशी-विदेशी रंगभेद, नस्लीय उत्पीड़न, जातीय उत्पीड़न या कह लें कि पूँजीवादी शोषण और दमन के तमाम अलग-अलग रूपों का सबके साथ मिलजुलकर विरोध करना होगा वो चाहे उनके अपने मूल देश में हो या उस देश में जहाँ वे रह रहे हैं। इसी के साथ ये भी ज़रूरी है कि अमरीका में अमरीकी समाज व जनता के साथ मिलजुल कन्धे से कन्धा लड़ाकर वहाँ के प्रगतिशील जनान्दोलनों में शिरकत की जाये। जब अमरीका के अश्वेत या चिकानो, या लैटिन मूल की आबादी या वहाँ का मजदूर वर्ग का कोई हिस्सा या औरतों के अधिकारों की हिमायत करने वाले संगठन जब वहाँ जनता के अधिकारों के लिए सड़क पर आते हैं तो उनका साथ दिया जाये। साथ ही तमाम क्रिस्म के देशी-विदेशी फासीवादी प्रचार का समाज में हर जगह मुँहतोड़ जवाब दिया जाये। इस तरह आम मेहनतकश जनता से जुड़कर ही फासीवाद का सफलतापूर्वक मुक़ाबला किया जा सकता है।

— मुनीश मैन्दोला

## नपुंसक न्याय-व्यवस्था से इंसानों माँगते-माँगते खैरलांजी के भैयालाल भोतमांगे का संघर्ष थम गया

आज से 11 साल पहले खैरलांजी के दलित परिवार के अमानवीय, बर्बर हत्याकाण्ड ने देश के हर न्यायप्रिय इंसान को झकड़ोर कर रख दिया था। हत्याकाण्ड में जीवित बचे परिवार के एकमात्र व्यक्ति भैयालाल भोतमांगे का भी 20 जनवरी 2017 को दिल के दौर से निधन हो गया। भारतीय व्यवस्था की नपुंसकता व असली चेहरा खैरलांजी की घटना के पीड़ित भैयालाल भोतमांगे की मृत्यु ने दिखा दिया है। उच्चवर्णियों की तिरस्कृत नज़रों से अपने परिवार का बचाव करते व जीवन के पुर्वार्ध में मेहनत कर अपने परिवार का पेट पालन कर शान्ति से जीने वाले भोतमांगे को अपने जीवन के उत्तरार्ध में उन्हीं की नज़रों के प्रकोप से भयंकर शोकांतिका का सामना करना पड़ा। प्रत्येक व्यक्ति उम्मीद के दम पर जीता है। भैयालाल भी अपने परिवार पर हुए पाशविक अत्याचार को खुद अपनी आँखों से देखने के बाद भी न्याय की आशा लिए न्यायव्यवस्था

का दरवाज़ा खटखटाते रहे। पर अन्त में दिल के दौर ने उनकी ये आशा छीन ली।

गाँव में सामाजिक विषमता की प्रचण्ड आग सहन करते हुए भी कठोर मन से जीने के लिए संघर्ष करने वाले भोतमांगे परिवार के लिए 29 सितम्बर 2006 का दिन एक काला दिन बनकर आया। पड़ोस के गाँव के प्रेमानन्द गजवी नाम के व्यक्ति के साथ किन्हीं कारणों से गाँव के लोगों का विवाद हो गया था। सच का पक्ष लेते हुए भैयालाल भोतमांगे की पत्नी सुरेखा ने गजवी के समर्थन में गवाही दी। ये बात गाँव के उच्चजातीय व उच्चवर्गीय वर्चस्व रखने वाले लोगों को सहन नहीं हुई। सदियों से वंचित रहे एक दलित व्यक्ति का स्वाभिमान से जीना, बच्चों को पढ़ाना, लड़की होने के बावजूद बेटी प्रियंका को 12वीं तक पढ़ाकर पुलिस में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित करना ये सब उन लोगों के लिए असहनीय था व साथ ही गजवी

के पक्ष में गवाही देने के कारण भी द्वेष में थे। इसके बाद मानवता पर कलंक लगाने वाली ये घटना हुई। पत्नी सुरेखा व बेटी प्रियंका का सामूहिक बलात्कार किया गया, नग्न कर गुप्तांगों पर वार कर उनके टुकड़े कर दिये। दोनों लड़कों को बेदम होने तक मारा व बाद में हाथ-पैर तोड़कर बैलगाड़ी में डालकर जुलूस निकाला। अन्त में गाँव के बाहर फेंक दिया। उसी समय असहाय भैयालाल भोतमांगे पुलिसवालों के पाँव पकड़कर विनती कर रहे कि कम से कम एक बार तो आप गाँव में चलो। पर पुलिसवालों ने उनकी एक न सुनी। भैयालाल की आँखों के खून के आँसु बता रहे थे कि सिर पर इतना बड़ा दुखों का पहाड़ टूटने के बाद उनकी जीने की इच्छा भी नहीं बची पर फिर भी हुआ अत्याचार देखते हुए, हार न मानते हुए परिवार को न्याय मिले, इसके लिए खुद प्रत्येक दिन शरीर जलाकर न्याय के लिए उनका संघर्ष शुरू हुआ। निधन तक 11 वर्ष के समय में भण्डारा में एक छात्रावास में

चपरासी के रूप में (रिटायरमेंट के बाद उनकी विशेष परिस्थितियाँ देखते हुए उन्हें सेवा विस्तार दिया गया था) काम करते हुए बेहद कम आय पर अपना जीवन काटते हुए भैयालाल न्याय के लिए कभी नागपुर तो कभी दिल्ली के चक्कर मारते रहे।

पर संवेदनशुन्य हो चुकी जुल्मी न्याय व्यवस्था तक भोतमांगे की आवाज़ व वेदना जीवन के आखिर तक भी नहीं पहुँच पायी। इस हत्याकाण्ड में गाँव के बहुत सारे लोगों का हाथ होने के बावजूद सिर्फ़ 11 लोगों पर मुक़दमा चलाया गया। भण्डारा न्यायालय ने इनमें से तीन आरोपियों को मुक्त कर दिया, दो को उम्रकैद व छह को फाँसी की सज़ा सुनायी। बाद में उच्च न्यायालय ने फाँसी की सज़ा को भी उम्रकैद में बदल दिया। सीबीआई ने भैयालाल भोतमांगे को आश्वासन दिया कि कम हुई सज़ा के विरोध में हम सर्वोच्च न्यायालय में अपील करेंगे, पर उन्होंने ऐसा किया नहीं। इसलिए भैयालाल ने

खुद सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर की। वहाँ भी उनको न्याय नहीं मिला। उनकी याचिका की अन्तिम सुनवाई अगस्त 2015 में हुई थी। मृत्यु से दो दिन पहले उन्होंने पूछा था कि दो सालों से स्थगित याचिका की सुनवाई कब होगी? उनका ये अन्तिम सवाल उनके दिल की गति रुकने के साथ ही ख़त्म हो गया। उन्हें व्यवस्था से दो हाथ करते हुए क्रदम-क्रदम हार का सामना करना पड़ा। उनके न्याय के सपने अधूरे रह गये। बथानी टोला, लक्ष्मणपुर बाथे जैसे दलित हत्याकाण्डों की ही तरह खैरलांजी हत्याकाण्ड में भी पीड़ितों को न्याय नहीं मिला। इस घटना ने एक बार फिर ग़रीबों, दलितों व समाज के अन्य वंचित तबकों को न्याय देने में इस न्याय-व्यवस्था की अक्षमता उजागर की है।

— बबन ठोके

# भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु के 86वें शहादत दिवस (23 मार्च) के अवसर पर "यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी जब तक भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर शक्तिशाली व्यक्तियों का एकाधिकार रहेगा..."

- एस. इरफ़ान हबीब

('बहरों को सुनाने के लिए' पुस्तक से कुछ अंश)

'इन्क़लाब जिन्दाबाद' क्रान्तिकारियों के लिए महज एक भावनात्मक रणघोष नहीं था बल्कि एक उदात्त आदर्श था जिसकी व्याख्या एच.एस.आर.ए. ने इस रूप में की :

"क्रान्ति पूँजीवाद, वर्गवाद तथा कुछ लोगों को ही विशेषाधिकार दिलाने वाली प्रणाली का अन्त कर देगी। ...उससे नवीन राष्ट्र और नये समाज का जन्म होगा।"

एच.एस.आर.ए. के एक और घोषणापत्र में कहा गया कि "क्रान्ति हताशा का दर्शन या हताशा लोगों का पन्थ नहीं है"। इसका अन्त इन शब्दों से हुआ :

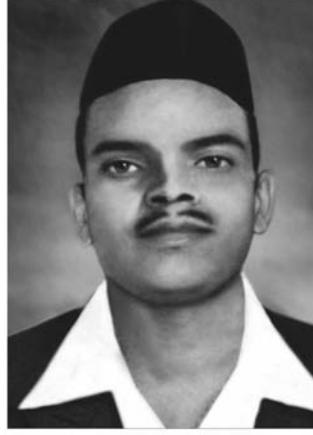
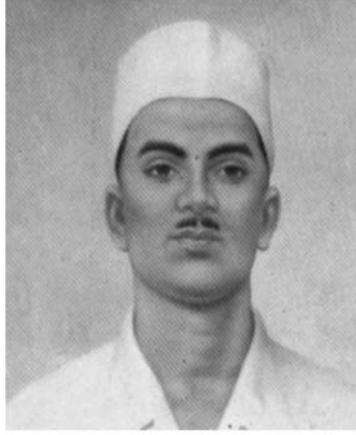
व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की हिफाजत की जायेगी। सर्वहारा की सम्प्रभुता को मान्यता दी जायेगी। हम ऐसी क्रान्ति की उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

भगतसिंह ने 6 जून, 1929 को अदालत में अपने बयान में और भी साफ़ शब्दों में कहा :

**क्रान्ति बम और पिस्तौल का सम्प्रदाय नहीं है। क्रान्ति से हमारा अभिप्राय है - अन्याय पर आधारित मौजूदा समाज-व्यवस्था में आमूल परिवर्तन।**

भगतसिंह कार्ल मार्क्स की इस बात से सहमत थे कि आमूल क्रान्ति काल्पनिक नहीं होती। "यूटोपियाई तो एक आंशिक, एक विशुद्ध राजनीतिक क्रान्ति की धारणा होती है, जो (पूँजीवादी व्यवस्था की - सं.) इमारत के खम्भों को खड़ा छोड़ देगी।" एच.एस.आर.ए. का लक्ष्य ऐसी क्रान्ति करना था जो भारतीय समाज के वर्तमान सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक ढाँचे को ध्वस्त करके एक नये युग की शुरुआत करेगी। उनकी क्रान्ति अराजकता या अव्यवस्था के लिए नहीं बल्कि सामाजिक न्याय के लिए थी।

जब तक क्रान्तिकारियों का तीसरा उद्देश्य, यानी समाजवाद हासिल न हो जाये तब तक क्रान्ति की स्पिरिट को जगाये रखना होगा। यह लक्ष्य अस्पष्ट या धुँधली धारणाओं या नौजवानी के अधैर्य पर आधारित नहीं था। उनकी विचारधारा गहन अध्ययन और सघन विचार-विमर्श के बाद निर्मित हुई थी। भगतसिंह ने द्वारकादास लाइब्रेरी को रूस, आयरलैण्ड और इटली की क्रान्तियों के बारे में साहित्य का दुर्लभ संग्रह हासिल करने में मदद की थी। उन्होंने सुखदेव और दूसरे लोगों की मदद से बहुत-से अध्ययन मण्डल संगठित किये थे और सघन राजनीतिक चर्चाएँ संचालित की थीं। ये अध्ययन मण्डल रूस के सामाजिक क्रान्तिकारी क्रोपोटकिन की तर्ज पर चलाये जाते थे। ...पंजाब और संयुक्त प्रान्त दोनों में युवा क्रान्तिकारी समाजवाद में



गहरी दिलचस्पी ले रहे थे।<sup>5</sup> लाहौर षड्यन्त्र केस में उनके साथ जेल में रहे जितेन्द्रनाथ सान्याल ने 1931 में बौद्धिक व्यक्ति के तौर पर भगतसिंह का यह मूल्यांकन रखा था :

भगतसिंह बेहद पढ़े-लिखे व्यक्ति थे और उनके अध्ययन का विशेष दायरा था समाजवाद... हालाँकि समाजवाद उनका विशेष विषय था, पर उन्होंने 19वीं सदी की शुरुआत से लेकर 1917 की अक्टूबर क्रान्ति तक रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन के इतिहास का गहन अध्ययन किया था। आम तौर पर माना जाता है कि इस विशेष विषय की जानकारी में हिन्दुस्तान में कुछ ही लोगों की उनसे तुलना की जा सकती है। बोल्शेविक शासन में रूस में किये गये आर्थिक प्रयोगों में भी उनकी बहुत दिलचस्पी थी।

जेल में रहने के दौरान उनकी बौद्धिक क्षमता दिन-दनी-रात चौगुनी रफ़्तार से बढ़ी और उन्होंने कई किताबें लिखीं जिनमें से चार अहम थीं : आत्मकथा, मृत्यु का द्वार, समाजवाद का आदर्श और भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन। दुर्भाग्यवश, इन सबकी पाण्डुलिपियाँ गुम हो चुकी हैं। उनकी जेल नोटबुक से उनकी पढ़ने की आदत का पता चलता है और यह भी पता चलता है कि कितने विविध प्रकार के लेखकों की कृतियाँ वे गहरी दिलचस्पी से पढ़ते थे। इनमें मार्क्स, एंगेल्स, लेनिन, रसेल, टॉम पेन, अप्टन सिंक्लेयर, वर्ड्सवर्थ, टेनीसन, टैगोर, बुखारिन, त्रॉत्स्की और बहुत-से अन्य शामिल थे। भगवतीचरण और सुखदेव ने भी समाजवादी साहित्य का व्यापक अध्ययन किया था। सुखदेव भी बहुत अधिक बौद्धिक क्षमतासम्पन्न व्यक्ति थे और उनके भाई ने तो उन्हें एच.एस. आर.ए. का चाणक्य कहा है। यशपाल ने लिखा है कि 1924-25 में भगवतीचरण क्रान्तिकारी भावनाओं से प्रेरित होकर कम्युनिस्ट समूहों के क़रीब आ गये थे और यूरोप से सभी अखबार उनके पते पर मँगाये जाते थे। वह कार्ल मार्क्स और लेनिन को अपना 'राजनीतिक गुरु और गाइड' मानते थे। समाजवाद में उनकी अडिग आस्था थी।...

एक और इतनी ही महत्वपूर्ण बात यह है कि भगतसिंह और उनके साथी पार्टी के दूसरे सदस्यों को भी समाजवाद

के आदर्शों और उसूलों को समझने में मदद करने के लिए कड़ी मेहनत करते थे। नौजवान भारत सभा का गठन मुख्यतः समाजवाद के आदर्शों का प्रचार करने, मज़दूरों और किसानों को संगठित करने और इस तरह क्रान्तिकारी उभार की रफ़्तार तेज़ करने के लिए किया गया था। भगतसिंह ने लाहौर की अदालत में दिये गये अपने इस बयान के ज़रिये विचारों के महत्त्व पर बल दिया था कि "क्रान्ति की तलवार विचारों की सान पर तेज़ होती है"। भगवानदास माहौर ने भी लिखा है कि किस तरह भगतसिंह उनसे मार्क्स की 'पूँजी' और दूसरी किताबें पढ़ने के लिए आग्रह करते रहते थे।

बेहिचक यह कहा जा सकता है कि एच.एस.आर.ए. के सदस्यों ने समाजवाद और मार्क्सवाद की ख़ासी अच्छी समझ विकसित कर ली थी। उन्हें जितना थोड़ा समय मिला था उसमें बेशक वे बड़े विद्वान नहीं बने होंगे लेकिन वे महज नौसिखुए भी नहीं थे। उन्होंने कुछ दूरी तय की थी और अध्ययन करते और सोचते-विचारते हुए भारतीय क्रान्ति की समस्याओं की वैज्ञानिक समाजवादी समझ की ओर धीरे-धीरे क़दम बढ़ा रहे थे। भगतसिंह के अन्तिम सन्देश से लगता है कि उन्होंने यह समझ लिया था कि समाजवादी व्यवस्था किसी वांछित व्यवस्था के लिए महज आत्मगत चाहत से नहीं पैदा हो सकती बल्कि यह सामाजिक परिस्थितियों की अपरिहार्यता की वस्तुगत पैदावार होती है।... अपने साथ जेल में मृत्युदण्ड की प्रतीक्षा कर रहे सुखदेव के मन में लक्ष्य को लेकर सन्देश उठने पर उन्हें लिखे ख़त में भगतसिंह ने कहा था :

"यदि हम इस क्षेत्र में न उतरे होते, तो क्या कोई भी क्रान्तिकारी कार्य कदापि नहीं हुआ होता? यदि ऐसा है तो आप भूल कर रहे हैं। यद्यपि यह ठीक है कि हम भी वातावरण को बदलने में बड़ी सीमा तक सहायक सिद्ध हुए हैं, तथापि हम तो केवल अपने समय की आवश्यकता की उपज हैं। मैं तो यह भी कहूँगा कि साम्यवाद के जन्मदाता मार्क्स, वास्तव में इस विचार को जन्म देने वाले नहीं थे। असल में यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति ने ही एक विशेष प्रकार के विचारों वाले व्यक्ति उत्पन्न किये थे। उनमें मार्क्स भी एक थे। हाँ, अपने स्थान पर मार्क्स भी

निस्सन्देह कुछ सीमा तक समय के चक्र को एक विशेष प्रकार की गति देने में आवश्यक सहायक सिद्ध हुए हैं। मैंने (और आपने भी) इस देश में समाजवाद और साम्यवाद के विचारों को जन्म नहीं दिया, वरन यह तो हमारे ऊपर हमारे समय एवं परिस्थिति के प्रभाव का परिणाम है। निस्सन्देह हमने इन विचारों का प्रचार करने के लिए कुछ साधारण एवं तुच्छ कार्य अवश्य किया है।"

चन्द्रशेखर आज़ाद 1930 में नेहरू से मिले थे और उनकी बातचीत के दौरान नेहरू ने आज़ाद से पूछा था कि वह किस तरह के समाजवादी थे? आज़ाद ने जवाब दिया कि वह वैज्ञानिक समाजवाद में यकीन करते हैं और जो लोग कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों को मानते हैं वे उनके आन्दोलन में रह सकते हैं। एच.एस.आर.ए. का नेतृत्व स्पष्ट तौर पर यह समझता था कि समाजवाद ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज है और इसलिए व्यवस्था के तौर पर वह पूँजीवाद का नकार है। इसलिए समाजवाद लाने की पूर्वशर्त है पूँजीवाद का ख़ात्मा।

भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने 6 जून, 1929 के अपने साज़ा बयान में इस मुद्दे को और साफ़ किया :

"समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मज़दूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुँहताज हैं। दुनियाभर के बाज़ारों को कपड़ा मुँहया करने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढँकनेभर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूँजीपति ज़रा-ज़रा-सी बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।...देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें।"

... अपने एक पर्चे में एच.एस. आर.ए. ने कहा था :

अगर हम इस लुटेरी अंग्रेज़ सरकार को देश से खदेड़ दें, तो हम पूँजीवाद के अत्याचार का आसानी से ख़ात्मा कर सकते हैं, और अगर हम पूँजीवाद को मिटा देंगे, तो अंग्रेज़ सरकार इस देश में टिकी नहीं रह पायेगी।... एच.एस. आर.ए. का मानना है कि ब्रिटिश सरकार को यहाँ से भगाने का सबसे आसान और सबसे अच्छा तरीका है समाजवाद कायम करना, जो क्रान्ति के बिना नहीं हो सकता।

आगे इसमें कहा गया :  
हम मनुष्य द्वारा मनुष्य के या एक नस्ल द्वारा दूसरी नस्ल के साथ किये जाने वाले अन्याय और अत्याचार के खिलाफ़ हैं। हिंसा और अन्याय को खत्म करने के लिए, हम समाजवादी क्रान्तिकारी पूँजीवाद और साम्राज्यवाद को पीछे धकेलने की पुरजोर कोशिश कर रहे हैं।

...वे जानते थे कि जब तक राज्य की मशीनरी शोषक वर्गों के हाथों में रहेगी तब तक समाजवाद दूर का सपना ही बना रहेगा। अक्टूबर 1930 में जेल से दिये एक सन्देश में भगतसिंह ने कहा था :

"क्रान्ति से हमारा अर्थ है - वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकना। इसके लिए, राज्यसत्ता पर अधिकार करना ज़रूरी है। अभी राज्य मशीनरी एक विशेष सुविधा-प्राप्त वर्ग के हाथों में है। जनता के हितों की रक्षा और अपने आदर्शों को यथार्थ में बदलना, यानी कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों के अनुसार समाज की नींव रखना - इन सबके लिए यह ज़रूरी है कि इस मशीनरी पर हमारा ही अधिकार हो।"

राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नाम अपने सन्देश में भगतसिंह ने क्रान्ति और समाजवाद के मुद्दे पर स्पष्ट तरीके से अपनी बात कही थी। फाँसी पर लटकाये जाने के क़रीब एक महीना पहले दिये गये इस सन्देश में उन्होंने नौजवान राजनीतिक कार्यकर्ताओं से कहा था :

"हम समाजवादी क्रान्ति चाहते हैं, जिसके लिए बुनियादी ज़रूरत राजनीतिक क्रान्ति की है। यही है जो हम चाहते हैं। राजनीतिक क्रान्ति का अर्थ राज्यसत्ता (यानी मोटे तौर पर ताक़त) का अंग्रेज़ी हाथों से भारतीय हाथों में आना है और वह भी उन भारतीयों के हाथों में, जिनका अन्तिम लक्ष्य हमारे लक्ष्य से मिलता हो। और स्पष्टता से कहें तो - राज्यसत्ता का सामान्य जनता की कोशिश से क्रान्तिकारी पार्टी के हाथों में आना। इसके बाद पूरी संजीदगी से पूरे समाज को (पेज 14 पर जारी)

## गणेशशंकर विद्यार्थी के शहादत दिवस (25 मार्च) के अवसर पर देश के मज़दूरों की दशा

(राजनीति और पत्रकारिता के क्षेत्र में क्रम रखते ही गणेशशंकर विद्यार्थी ने किसानों और मज़दूरों के मोर्चे पर ध्यान केन्द्रित कर दिया था। दिसम्बर, 1919 में उन्होंने कानपुर के 25 हजार कपड़ा-मिल मज़दूरों की ऐतिहासिक हड़ताल का नेतृत्व किया था। उन्होंने कानपुर में कपड़ा मिल-मज़दूरों को संगठित किया और 1927 से मृत्युपर्यन्त तक कानपुर मिल मज़दूर सभा के अध्यक्ष रहे। 'सभा' का मुख्य पत्र 'मज़दूर' भी उन्हीं की पहलकदमी से निकला था। 1919 में वाशिंगटन में आयोजित मज़दूर कॉन्फ्रेंस में भारत की ब्रिटिश सरकार संयुक्त प्रान्त के चीफ़ सेक्रेटरी ए. सी. चटर्जी व भारत सेवक समिति के जोशी को भेजने पर विचार कर रही थी। उसी प्रसंग में विद्यार्थीजी ने 15 सितम्बर, 1919 को यह लेख लिखा था। 25 मार्च 1931 को कानपुर में साम्प्रदायिक दंगों की आग बुझाते हुए वे शहीद हो गये थे।- सं.)

'मज़दूर' शब्द से हमारा मतलब उन मज़दूरों से है जो मिल और कारखानों में काम करते हैं। बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, नागपुर, कानपुर, देहली आदि देश के अनेक नगरों में सैकड़ों बड़े और छोटे मिल और कारखाने हैं और उनमें लाखों मज़दूर काम करते हैं। लोगों की यह धारणा है कि इन मज़दूरों की दशा अच्छी है, बँधा रोजगार है, सवेरे गये और शाम को चले आये, महीना पूरा हुआ और तनखाह मिल गयी। परन्तु यह भ्रम है। इन मज़दूरों की हालत साधारण मज़दूरों की हालत से बुरी है। इनको 12 घण्टे मेहनत करनी पड़ती है। बीच में केवल आधे घण्टे की छुट्टी खाने-पीने के लिए मिलती है। सवेरे 6 बजे की हाज़िरी, देरी होने पर जुर्माना, और कहीं-कहीं तो वह जुर्माना बे-हिसाब होता है। एक मिनट की देरी हुई और दस दिन का बोनस (एक प्रकार का भत्ता) जुर्माने में काट लिया गया। दोपहर को आधे घण्टे की छुट्टी मिलती। अपनी-अपनी झोपड़ियों की ओर भागे। खाने बैठे कि कारखाने की सीटी बजी। हाथ का कौर हाथ में और मुँह-का-मुँह में रह गया और कारखाने की ओर लपके। पहुँचते-पहुँचते कारखाना चल पड़ा और हाँफते-हाँफते काम में लग गये। फिर छह बजे या साढ़े छह बजे छुट्टी मिली।

थके-माँदे घर पहुँचे, फिर खा-पीकर पड़ रहने के सिवा उन्हें और कुछ करने-धरने या सोचने-समझने का ध्यान नहीं रहता। बम्बई और मद्रास के मज़दूरों ने तंगदस्ती से परेशान होकर हड़तालें कीं, और अपनी उजरतें कुछ-कुछ बढ़वा ली हैं। परन्तु अन्य स्थानों में मज़दूरों की उजरतें उतनी ही हैं जितनी कि युद्ध के पहले थीं। उनकी मानसिक और आर्थिक उन्नति के कोई साधन नहीं। बहुत से कारखानों में उनके साथ असभ्य व्यवहार होता है। छोटी-छोटी बातों पर उनका अपमान होता है। उन्हें ठोकरें लगाई जाती हैं। उन्हें मारा जाता है। कारखाने के मालिकों और बड़े नौकरों का यह क्रूर,

शुष्क और हाकिमाना बर्ताव मज़दूरों की आत्माएँ दाब देता है, उनकी स्वाधीनता मार देता है, उनमें भय पैठ जाता है, और वे डरपोक, कायर, झूठे और आत्मसम्मान के भाव से शून्य हो जाते हैं। कारखाने वालों की असभ्यता और लापरवाही से मज़दूरों के चरित्र में और भी दूषण उत्पन्न हो जाते हैं। बहुत से स्थानों में स्त्री और पुरुष एक साथ काम करते हैं। स्त्रियों की लज्जा का कोई ख्याल नहीं किया जाता है। वे अपढ़, मूर्ख और आचरण सम्बन्धी हर प्रकार की दाब से वंचित पुरुषों के बीच में पड़ जाती हैं। इसका असर स्त्री और पुरुष दोनों समुदायों के लिए खराब होता है।

लाखों स्त्री-पुरुषों का आचरण इस प्रकार नष्ट हो चुका और इस समय भी लाखों का आचरण इसी प्रकार नष्ट हो रहा है। मिलों और कारखानों की ड्योढ़ी पर अपने शरीर और आत्मा दोनों का बलिदान करके हमारे लाखों भाई और बहन जिस प्रकार अपना पेट पाल रहे हैं, वह किसी प्रकार अच्छा नहीं कहा जा सकता। परन्तु उसके सुधार के लिए क्या हो रहा है? जब हमें हजारों मील दूर पड़े हुए द. अफ्रीका और फीजी के क़बाइली भाइयों पर अत्याचार होने का समाचार मिलता है तब पढ़े-लिखे भारतवासी उस पर हमसे जो कुछ बनता है उसका करना अपना धर्म समझते हैं।

परन्तु द. अफ्रीका और फीजी में जो कुछ हो रहा है, उससे अधिक भयंकर काण्ड हमारी आँखों के सामने हो रहा है। फीजी में हम कुछ सहस्र स्त्रियों के अपमान पर अपनी हतक समझते हैं, परन्तु देश की मिलों में दुराचरण को जो दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता हुआ राज्य है और जिसमें पड़कर हमारे लाखों युवकों और युवतियों का आचरण भ्रष्ट होता है, उस पर हमारी भूलकर भी नज़र नहीं पड़ती। हम प्रवासी भाइयों की दुर्दशा पर दुःखी होते हैं, परन्तु कारखानों में गुलामी का जीवन व्यतीत करने वाले लाखों भाई-बहनों की दशा पर हमारा ध्यान तक

नहीं जाता। अछूत जातियों पर हमें दया आती है, हम उन्हें कुलीनता और कट्टरता के अत्याचार से पीड़ित समझते हैं, और इसलिए उनके उद्धार और मानसिक और आत्मिक कल्याण के लिए यत्न करते हैं परन्तु इन लाखों आदिमियों पर हमारी दृष्टि नहीं पड़ती, जिनका शारीरिक, नैतिक और आत्मिक अस्तित्व पददलित होता रहता है।

इस देश ने बड़े-बड़े कारखानों की रचना-प्रणाली पाश्चात्य देशों से पायी है। परन्तु पाश्चात्य देशों में जो सुधार हुए या जो सुधार हो रहे हैं, वे यहाँ नहीं आने पाये, या नहीं आने पाते। वहाँ भी मज़दूरों के सुख-दुःख का कोई ख्याल नहीं किया जाता था। वे धन उत्पन्न करने की मशीन समझे जाते थे। उनसे कसकर काम लिया जाता था। वे मरें चाहे जियें, बीमार पड़ें, चाहे चोट खाकर लूले या लंगड़े और सदा के लिए अपाहिज हो जायें, परन्तु कारखाने वालों को मतलब न था। उन्हें तो केवल अपने लाभ की चिन्ता रहती थी। शिक्षा के प्रचार ने मज़दूरों को जगाया और वे समझ गये कि केवल स्वार्थी लोगों के लिए मेहनत करके मरते-खपते रहना हमारा काम नहीं है। उन्होंने अपने उद्धार के लिए बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं और लड़ रहे हैं। बड़ी-बड़ी कठिनाइयों और तपस्या के पश्चात उनकी दशा अब जाकर कहीं कुछ सुधरी है। इस देश के मज़दूर भी अन्त में उसी ठिकाने पर पहुँचेंगे, जिस पर पाश्चात्य देशों के मज़दूर आज से बहुत पहले पहुँच चुके हैं। यदि वर्तमान अवस्था में कोई परिवर्तन न हुआ तो यह अवश्यम्भावी है। परन्तु अच्छा हो कि अपने ही कल्याण की दृष्टि से वे लोग, जो मज़दूरों की लाचारी और मूर्खता से बेजा लाभ उठा रहे हैं और वे लोग जिनके हाथों में करने-धरने की कुछ शक्तियाँ हैं, अपना वर्तमान ढंग बदलकर देश के मज़दूरों की बुरी अवस्था पर पूरा-पूरा विचार करें और उन्हें ऐसी सुविधाएँ दें, जिससे लाभ उठाकर वे भी अपने को मनुष्य कह और कहला सकें।

पाश्चात्य देशों में मज़दूरों के बच्चों की शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध है। उनके रहने के लिए हवादार और स्वच्छ मकान बनाये जाते हैं। उनसे आठ घण्टा प्रतिदिन से अधिक काम नहीं लिया जाता। बीमार पड़ने पर उनका इलाज होता है और उनके मनोरंजन के लिए खेल-तमाशे होते हैं। इसके विपरीत भारतीय मज़दूरों के निवास के लिए कहीं भी कोई नियमित प्रबन्ध नहीं है। जिस नगर में कारखाने होते हैं बहुधा मज़दूर तंग और मैली कोठरियों में रहते हैं। उनमें हवा का गुजर नहीं और एक-एक कोठरी में दस-पन्द्रह आदमी तक रहते हैं। उन पर व्यवहार में सख्ती का करना इसलिए आवश्यक समझा जाता है लोगों के मन में यह बात बैठ गयी है कि यदि इतनी सख्ती न की जाये तो मज़दूर काम ही न करें। कारखानेवालों को इस समय बहुत लाभ हैं, परन्तु मज़दूरों की उजरत बढ़ाने का सवाल जब उनके सामने आता है तब वे यह भय दिखाते हैं कि यदि उजरत बढ़ाई गयी तो हिन्दुस्तान में बनने वाला माल महँगा पड़ने लगेगा और फिर हम विदेशी व्यापारियों का मुकाबला न कर सकेंगे। यही बात वे उस समय भी कहते हैं जब उनसे कहा जाता है कि मज़दूरों के काम का समय कुछ कम रहने दो। इस विषय में तो कहीं-कहीं यह हास्यास्पद बात भी कही जाती है कि जितनी देर मज़दूर से काम न लिया जायेगा, उतना समय वे लोग किसी बदमाशी के काम में लगावेंगे। कितनी बड़ी हितैषिता है! यदि मज़दूरों से 24 घण्टे लगातार काम लिया जाये तो बिलकुल विशुद्ध ही बने रहें, उनके हृदयों तक में बुरे विचार न आने पावें। वे व्यापारी जो इस प्रकार के विचार के हैं, सरकार के सामने यह प्रस्ताव क्यों नहीं पेश कर देते कि मज़दूरों को दूध का धुला हुआ रखने में यह बात बहुत सहायक होगी, यदि फ़ैक्ट्रीज़ ऐक्ट में बारह घण्टे के बजाय उनसे चौबीस घण्टे काम लेने का नियम बना दिया जाये।

जापान की ओर इशारा किया

### "यह लड़ाई चलती रहेगी..."

(पेज 13 से आगे)  
समाजवादी दिशा में ले जाने के लिए जुट जाना होगा।"

...एच.एस.आर.ए. के क्रान्तिकारियों की इस बढ़ती समाजवादी चेतना के कारण वे विदेशी और देशी पूँजीवाद के रिश्तों को समझ सकते थे। वे विदेशी पूँजीपतियों के साथ भारतीय पूँजीपति वर्ग के समझौतावादी, दलाली के सम्बन्ध को साफ़ तौर पर देख रहे थे, जो दोनों मिलकर जनता से उसका हक़ छीन रहे थे। वे मानते थे कि हिन्दुस्तान को एक वर्ग ने गुलाम बनाया है - जिसमें भारतीय और विदेशी दोनों शोषक शामिल हैं। यह समझदारी अनेक नारों और पच्चों में झलकती है जिनमें कहा गया है कि

आज़ादी और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण के ख़ात्मे के बीच सीधा रिश्ता है। देशी शोषकों से भी उनका सामना हुआ और उन्होंने साफ़ कहा कि जनता के हितों के लिए वे भी उतने ही खतरनाक हैं जितने कि विदेशी पूँजीवादी शासक। एच.एस.आर.ए. के घोषणापत्र ने साफ़ तौर पर यह भी कहा :

"भारत के मेहनतकश वर्ग की हालत आज बहुत गम्भीर है। उसके सामने दोहरा खतरा है - विदेशी पूँजीवाद का एक तरफ़ से और भारतीय पूँजीवाद के धोखे भरे हमले का दूसरी तरफ़ से। भारतीय पूँजीवाद विदेशी पूँजी के साथ हर रोज़ बहुत से गँठजोड़ कर रहा है। कुछ

राजनीतिक नेताओं का डोमिनियन (प्रभुतासम्पन्न) का दर्जा स्वीकार करना भी हवा के इसी रुख को स्पष्ट करता है। ...भारतीय पूँजीपति भारतीय लोगों को धोखा देकर विदेशी पूँजीपति से विश्वासघात की क्रीमत् के रूप में सरकार में कुछ हिस्सा प्राप्त करना चाहता है।"

जेल से भेजे अपने सन्देश में भगतसिंह ने लिखा था कि, "किसानों को सिर्फ़ विदेशी शासन के जुवे से ही नहीं बल्कि ज़मींदारों और पूँजीपतियों के जुवे से भी ख़ुद को आज़ाद कराना है।" 3 मार्च, 1931 के अपने सन्देश में उन्होंने और भी साफ़ तौर पर कहा :

"युद्ध छिड़ा हुआ है और यह लड़ाई तब तक चलती रहेगी जब तक कि शक्तिशाली व्यक्तियों ने भारतीय जनता और श्रमिकों की आय के साधनों पर अपना एकाधिकार कर रखा है - चाहे ऐसे व्यक्ति अंग्रेज़ पूँजीपति हों या अंग्रेज़ और भारतीय पूँजीपतियों का गँठजोड़ हो, उन्होंने आपस में मिलकर एक लूट जारी कर रखी है। चाहे शुद्ध भारतीय पूँजीपतियों के द्वारा ही निर्धनों का खून चूसा जा रहा हो इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता।"

शोषण का ख़ात्मा और मज़दूरों-किसानों के समाजवादी राज्य की स्थापना सिर्फ़ उपरोक्त वर्गों को संगठित

जाता है कि वहाँ भी तो मज़दूरों से उतनी ही मेहनत ली जाती है, जितनी कि हिन्दुस्तान में, लेकिन जापान की ओर अंगुली उठाना अब बिलकुल भूल है। संसार में परिवर्तन ने जापान पर भी अपना प्रभाव डाला है और वहाँ के मज़दूर भी हड़तालों द्वारा इस बात को स्पष्ट रूप से प्रकट कर रहे हैं कि हम भी मनुष्य हैं, पशु नहीं। मज़दूरों के समय की कमी के सम्बन्ध में एक आपत्ति यह भी उठाई जाती है कि भारतीय मज़दूर सुस्ती के साथ काम करता है। जितना काम एक दिन में लंकाशायर का एक अंग्रेज़ मज़दूर अकेला करता है, उतना ही काम तीन भारतीय मज़दूर मिलकर एक दिन में करते हैं। पता नहीं, बात कहाँ तक ठीक है। यदि ठीक भी हो तो मज़दूरों के समय के घटाने में बाधक नहीं होनी चाहिए। यहाँ के कारखानों में अधिकांश मज़दूर तनखाहों पर काम नहीं करते, वे ठेकों पर काम करते हैं। जितना काम करते हैं उतना ही दाम पाते हैं, उससे अधिक नहीं। आगे की विपदाओं से बचने के लिए हमें देश के निवासियों, देश की गवर्नमेण्ट और देश के कारखाने वालों का ध्यान इस आवश्यक समस्या की ओर खींचना है। वाशिंगटन की मज़दूर कॉन्फ्रेंस में गवर्नमेण्ट की ओर से इस प्रान्त के चीफ़ सेक्रेटरी मि. ए. सी. चटर्जी और भारत सेवक समिति के मि. जोशी भेजे जाने वाले हैं, परन्तु इस कॉन्फ्रेंस में योग देने के लिए आगे बढ़ना उसी समय उचित हो सकता था, जब वह देश के मज़दूरों के कल्याण के लिए उन बातों को कर चुकी होती, जो वह आसानी से कर सकती है। अब भी समय है, गवर्नमेण्ट इन कामों को करे और कारखाने वाले उसे मदद दें देश के समझदार आदमी, यदि गफलत करेंगे तो लाखों आदिमियों के पददलित किये जाने और देश की एक बड़ी शक्ति के अविकसित रह जाने के पाप के भागी होंगे।

करके ही सम्भव थी। एच.एस.आर.ए. ने इस सवाल पर विचार किया : क्रान्ति के लिए कौन लड़ेगा या आन्दोलन का सामाजिक आधार क्या होगा? वे इस सच्चाई से वाकिफ़ थे कि उनका आन्दोलन जनसाधारण - मज़दूरों, किसानों और रैडिकल बुद्धिजीवियों को संगठित करने पर आधारित होगा। वे मानते थे कि "मज़दूर ही वास्तव में समाज को पालता है। जनता की सम्प्रभुता ही मज़दूरों की अन्तिम नियति है।" जनवरी 1930 में कानपुर में हुई एच.एस.आर.ए. की केन्द्रीय कमेटी की बैठक, जिसमें औरों के साथ

## सोफ़ी शोल : फासीवाद के विरुद्ध लड़ने वाली एक बहादुर लड़की की गाथा

जर्मन नाज़ियों ने लाखों की तादाद में यहूदियों का जनसंहार तो किया ही था, साथ ही 1933 से 1945 के दौरान हिटलर के फासिस्ट शासन का प्रतिरोध करते हुए 77 हजार अन्य जर्मन नागरिकों को भी कोर्ट मार्शल और नाज़ियों की तथाकथित विशेष या 'जन अदालतों' द्वारा मौत की सज़ा दी

ही नाज़ी विचार सिखाने का काम शुरू हो जाता था, और 'हिटलर युवा' के ज़रिये पूर्ण दिमागी जकड़ हासिल करने के लक्ष्य तक जारी रहता था।" लेकिन मेडिकल छात्र हान्स और दो अन्य दोस्तों ने सोवियत संघ में पूर्वी मोर्चे पर फ़ौजी अस्पताल में काम करते हुए युद्ध की असली विभीषिका को देखा

वितरित किया। गेस्टापो द्वारा पूछताछ के दौरान सोफ़ी ने बाद में बताया था कि 1942 की गर्मियों से ही समूह का मक़सद व्यापक जर्मन जनता तक पहुँचना था, इसलिए इस पर्व में समूह ने अपना नाम बदलकर 'जर्मन प्रतिरोध आन्दोलन' कर लिया था। इस वक़्त तक वे निश्चित थे कि जर्मनी युद्ध नहीं

उपद्रव तक कर चुके थे। इसने 'व्हाइट रोज़' के सदस्यों का जोश बढ़ा दिया था। स्टालिनग्राड की हार की ख़बर आने पर इन्होंने अपना अन्तिम, छठा पर्चा निकाला - 'छात्र साथियो'। इसमें ऐलान किया गया कि 'हमारी जनता के लिए सबसे घृणित आततायी शासक' के लिए 'फ़ैसले की घड़ी' आ पहुँची थी और 'हमें स्टालिनग्राड के मृतकों की सौगन्ध है'। 3, 8 और 15 फ़रवरी को इन लोगों ने म्यूनिख विश्वविद्यालय और अन्य इमारतों पर टिन के स्टेंसिल से 'डाउन विद हिटलर' और 'आज़ादी' जैसे नारे भी लिखे।

इस बार इनके पास डाक से भेजने के बाद पर्चे बच गये थे और लिफ़ाफ़े ख़त्म हो गये थे और कागज़ की कमी से और मिल भी नहीं रहे थे। इसलिए और सदस्यों के मना करने के बावजूद सोफ़ी और हान्स शोल ने 18 फ़रवरी को अपनी ज़िम्मेदारी पर इन्हें विश्वविद्यालय में बाँटने का फ़ैसला किया। उस दिन सुबह दोनों एक सूटकेस में पर्चे लेकर गये और क्लास के दौरान कमरों के बन्द दरवाज़ों के सामने पर्चे रख दिये। लेकिन कुछ पर्चे बच जाने पर इसे ऊपर की मंजिल पर बाँटने गये। वहाँ अचानक कुछ आखिरी पर्चे को सोफ़ी ने ऊपर से हॉल में फेंक दिया जिसे एक

हान्स शोल तथा प्रोब्ल्ट पर नाज़ियों की राजनीतिक मुक़दमों में नाइंसाफ़ी के लिए बदनाम 'जन अदालत' में मुक़दमा चलाया गया। गहन पूछताछ और मुक़दमे में जज फ़्रेसलर की धमकियों के बावजूद सोफ़ी दृढ़ता और वीरता से डटी रही और जवाब दिया, "हमारी तरह तुम भी जानते हो कि युद्ध हारा जा चुका है। लेकिन तुम अपनी कायरता से इसे स्वीकार नहीं करना चाहते। तीनों को भारी राष्ट्रद्रोह का दोषी घोषित कर जज रोलैण्ड फ़्रेसलर ने मौत की सज़ा दी। उसी दिन तीनों को गिलोटिन द्वारा गर्दन काटकर मृत्युदण्ड दे दिया गया जिसका तीनों ने बहादुरी से सामना किया। गिलोटिन का आरा जब गर्दन पर गिरने ही वाला था तब सोफ़ी ने कहा 'सूर्य अभी भी प्रकाशमान है' और हान्स ने नारा लगाया 'आज़ादी ज़िन्दाबाद'।

'व्हाइट रोज़' समूह के अन्य बहुत से सदस्यों को भी गिरफ़्तार कर अलग-अलग मुक़दमों में कई को मृत्युदण्ड और आजन्म कारावास आदि की सज़ाएँ दी गयीं। यद्यपि इन लोगों को ग़द्दार और दुष्ट कहकर सज़ाएँ दी गयी थीं और जर्मन अख़बारों में ऐसी ही रिपोर्टें छपी थीं लेकिन इनके समर्थकों की संख्या इतनी हो चुकी थी कि जर्मन नाज़ी अधिकारी इसके बारे में ख़बरों-



गयी थी। इनमें से ज़्यादातर को हम नहीं जानते, लेकिन म्यूनिख विश्वविद्यालय के छात्रों के 'व्हाइट रोज़' नामक नाज़ी विरोधी भूमिगत प्रतिरोध समूह और उसकी अप्रतिम वीर नायिका सोफ़ी शोल और उसके सहयोद्धाओं के संघर्ष और बलिदान से दुनिया परिचित है। जीवविज्ञान और दर्शन की 21 वर्षीय छात्र सोफ़ी और उसके भाई हान्स द्वारा विश्वविद्यालय में हिटलर और युद्ध के खिलाफ़ पर्चे बाँटने, गिरफ़्तारी, लम्बी तफ़्तीश, मुक़दमे और तीसरे साथी क्रिस्टोफ़ प्रोब्ल्ट सहित मौत की सज़ा की कहानी है 2005 की जर्मन फ़िल्म- 'सोफ़ी शोल - द फ़ाइनल डेज़' में जो न्याय के लिए उनके बहादुर संघर्ष की भी गाथा दर्शाती है। यह फ़िल्म गेस्टापो और नाज़ी अदालत की फ़ाइलों में इस मामले की पूछताछ और मुक़दमे के रिकॉर्ड के आधार पर इस सोफ़ी शोल और साथियों द्वारा फासिस्टों के विरुद्ध जर्मन जनता को जगाने के प्रयास की इस शौर्यपूर्ण ऐतिहासिक घटना का चित्रण बहुत सुन्दर ढंग से करती है।

सोफ़ी और उसके भाई हान्स की तरह 'व्हाइट रोज़' ग्रुप के अधिकांश नौजवान सदस्य जनवादी, उदार, मानवतावादी परिवारों से आये थे, लेकिन इन्होंने भी शुरू में जोश के साथ हिटलर के नाज़ी युवा संगठन में काम किया था। उस समय के जर्मन समाज का वर्णन इस समूह के ही एक जीवित बचे सदस्य ने ऐसे किया था, "हर चीज़ पर हुकूमत का नियन्त्रण था - मीडिया, शस्त्र, पुलिस, सेना, अदालत, संचार, यात्रा, हर स्तर की शिक्षा, सब सांस्कृतिक-धार्मिक संगठन। कम उम्र से

था और उन्हें पोलैण्ड और सोवियत संघ आदि में किये गये यहूदियों तथा अन्यो के निर्मम जनसंहार की ख़बरें भी पता चली थीं। इस सबने उन्हें युद्ध और नाज़ीवाद के खिलाफ़ जर्मन जनता में प्रचार करने और प्रतिरोध संगठित करने की प्रेरणा दी।

जून 1942 में उन्होंने पर्चे छापकर और दीवारों पर लिखकर अपना काम शुरू किया। ये लोग पर्चे को हाथ से चलने वाली साइक्लोस्टाइल मशीन पर छापते थे और डाक से म्यूनिख और उसके आस-पास के क्षेत्र में छात्रों, शिक्षकों और बुद्धिजीवियों को भेजकर, पब्लिक टेलीफ़ोन बूथ और ऐसी जगह किताबों में रखकर, आदि तरीकों से बाँटते थे। इनमें वे नाज़ी शासन के अपराधों और अत्याचारों के बारे में बताते थे और प्रतिरोध की अपील करते थे। अपने दूसरे पर्चे में इन्होंने यहूदियों पर भयंकर अत्याचार-उत्पीड़न की निन्दा की थी, "पोलैण्ड पर विजय से 3 लाख यहूदियों को पाशविक ढंग से क़त्ल किया गया है। जर्मन लोगों की मूर्ख, बेवकूफ़ाना नींद फासीवादियों के जुर्मों को प्रोत्साहन दे रही है। हममें से हरेक इस जुर्म के दोष से मुक्त रहना चाहता है, अपने ज़मीर में ज़रा भी चुभन महसूस किये बग़ैर चैन से अपना जीवन जी रहा है। लेकिन हम इस गुनाह से दोषमुक्त नहीं हो सकते; हम सब दोषी हैं, दोषी हैं, दोषी हैं!"

जनवरी 1943 में 'व्हाइट रोज़' के पाँचवें पर्चे 'जर्मन जनता से अपील' की 6 हजार प्रतियाँ छपी गयीं और इन्हें समूह के सदस्यों-समर्थकों ने म्यूनिख ही नहीं पूरे दक्षिण जर्मनी के शहरों में



जीत सकता था; इसलिए उन्होंने कहा कि 'हिटलर युद्ध जीत नहीं सकता, सिर्फ़ लम्बा खींच सकता है'। उन्होंने नाज़ी अमानवीयता, साम्राज्यवाद और प्रशियाई सैन्यवाद पर प्रहार किया और अभिव्यक्ति की आज़ादी तथा अपराधी तानाशाही राजसत्ता से नागरिकों की हिफ़ाज़त के लिए जर्मन प्रतिरोध आन्दोलन में शामिल होने का आह्वान किया।

जनवरी 1943 के अन्त में स्टालिनग्राड की लड़ाई में जर्मन फ़ौज की विनाशक हार और आत्मसमर्पण ने युद्ध की दिशा बदल दी थी और जर्मनों के क़ब्ज़े वाले सब देशों में प्रतिरोध आन्दोलन खड़े होने लगे थे। 13 जनवरी 1943 को म्यूनिख के नाज़ी पार्टी नेता द्वारा छात्रों को कायर कहे जाने पर छात्र

कर्मचारी ने देख लिया और इन्हें बाहर जाते हुए रोककर गेस्टापो द्वारा गिरफ़्तार कर लिया गया। सातवें पर्चे का मजमून भी उस समय हान्स के पास था जिसे उसने नष्ट करने की कोशिश की लेकिन कामयाब नहीं हुआ, हालाँकि सोफ़ी अपने पास के सारे सबूत नष्ट करने में कामयाब हो गयी थी। गेस्टापो में इस मामले की तफ़्तीश रॉबर्ट मोर नाम के जाँचकर्ता ने की थी और शुरू में उसने सोफ़ी को निर्दोष मानकर रिहा करने का आदेश दिया था। लेकिन हान्स द्वारा सब कबूल कर लेने और अन्य सबूत मिलने के बाद सोफ़ी ने भी कबूल कर लिया और अपने समूह के अन्य सदस्यों को बचाने के लिए सारी ज़िम्मेदारी ख़ुद लेने की कोशिश की।

22 फ़रवरी 1943 को सोफ़ी और

अफ़वाहों को दबाने में कामयाब न हो सके और ये और भी जर्मनों को प्रतिरोध के लिए प्रेरित करते रहे। इनके प्रतिरोध और सज़ा की ख़बरें जर्मनी से बाहर आने पर सोवियत लाल सेना ने व्हाइट रोज़ के आज़ादी के संघर्ष के सम्मान में जर्मन लोगों में प्रचार के लिए एक पर्चा प्रक़शित किया और इनके छोटे पर्चे को 'म्यूनिख के छात्रों का घोषणापत्र' के नाम से प्रक़शित कर मित्र राष्ट्रों के विमानों द्वारा पूरे जर्मनी में गिराया गया। फ़िल्म आकाश से गिरते पर्चे के इस दृश्य के साथ समाप्त होती है।

— मुकेश त्यागी

# आधार : लूटतन्त्र की रक्षा के लिए जनता पर निगरानी और नियन्त्रण का औज़ार

- मुकेश त्यागी

'सबका साथ सबका विकास' वाली सरकार ने फ़रमान जारी किया है कि बच्चों को स्कूल में मिड डे मील तभी मिलेगा जब उनके पास आधार होगा! इसी तरह राशन कार्ड पर मिलने वाला गेहूँ, चावल या चीनी लेने के लिए पहले आधार चाहिए, बुढ़ापा पेंशन लेनी हो या ट्रेन टिकट, बच्चों को स्कूल की परीक्षा देनी हो या मज़दूर को ज़िन्दगी भर काम करने के बाद रिटायर होते वक़्त अपना ही जमा किया प्रोविडेंट फ़ण्ड या दलित-आदिवासी छात्रों को अपनी छात्रवृत्ति लेनी हो, आधार पहले चाहिए। बेहूदगी और असंवेदनशीलता इस हद तक है कि भोपाल गैस काण्ड के दर्दनाक बीमारियों से दरपेश पीड़ितों को अस्पताल में इलाज कराने के लिए अब पहले आधार दिखाना पड़ेगा और बँधुआ मज़दूर की मुक्ति में मदद अफ़सरशाही तब ही करेगी जब पहले वह आधार दिखाये। गर्भवती महिला या नवजात बच्चों के लिए भी किसी योजना का फ़ायदा लेना हो तो पहले महिला और बच्चे का आधार बनवाना ज़रूरी है। स्थिति यह है कि किसी भी सार्वजनिक सेवा का लाभ लेने के लिए पहले आधार होना ज़रूरी किया जा रहा है और फिर इसके बाद आधार का बायोमेट्रिक (जैविक) सत्यापन करना ज़रूरी कर दिया जा रहा है।

2009 में जब आधार बनाने की योजना शुरू की गयी थी तो कहा गया था कि इसमें पंजीकरण करवाना स्वैच्छिक होगा। उस वक़्त इसका मक़सद बताया गया था, लाभकारी कार्यक्रमों को ज़रूरतमन्द ग़रीबों-वंचितों तक पहुँचाना, छद्म लाभ लेने वालों को अलग करना, भ्रष्टाचार को कम करना, सरकारी योजनाओं को पारदर्शी और कुशल बनाना, आदि। जनता को यह समझाने की कोशिश की गयी कि सरकारी योजनाओं का लाभ उठाने के लिए हमें अपने अधिकारों और निजता से कुछ समझौता तो करना ही पड़ेगा और हर व्यक्ति की पहचान और हर जानकारी सरकार के पास होने से वह ग़रीबों के फ़ायदे के लिए न सिर्फ़ सही नीतियाँ बना पायेगी बल्कि उनका फ़ायदा भी सही व्यक्तियों तक पहुँचा पायेगी जिससे ग़रीबी मिटाने में सफलता मिलेगी। लेकिन इतने सालों में इसके लागू होने का तज़ुर्बा बता रहा है कि यह असल में सर्वाधिक वंचित ज़रूरतमन्दों को लाभकारी योजनाओं के फ़ायदे से वंचित करने और सरकारी तन्त्र के करीबियों को फ़ायदा पहुँचाने का औज़ार तो है ही, साथ में यह नागरिकों पर निगाहबानी और जासूसी करने का तन्त्र है जो न सिर्फ़ हमारी निजता का हनन करता है बल्कि हमारे जनतान्त्रिक अधिकारों को कुचलने, गला घोटने का फन्दा तैयार कर रहा है। न सिर्फ़ सारे सरकारी कल्याण कार्यक्रम, जिनमें पहले से ही बहुत सी खामियाँ थीं, अब पूरी तरह बरबाद किये जा रहे हैं बल्कि हमारे दैनन्दिन जीवन के हर क्षेत्र पर

सरकारी तन्त्र का शिकंजा कसने और जनतान्त्रिक आज़ादी और अभिव्यक्ति का गला घोटने की भी तैयारी की जा रही है।

## आधार - ग़रीबों का समावेश नहीं, बहिष्कार

क्या वास्तव में आधार के उपयोग से सार्वजनिक सेवाओं की उपलब्धता और कार्यकुशलता में इज़ाफ़ा हुआ है? इसके बारे में सामाजिक संगठनों और शोधकर्ताओं ने काफ़ी अध्ययन किये हैं और वस्तुस्थिति को इसके विपरीत पाया है। आन्ध्रप्रदेश के नागरिक आपूर्ति विभाग ने 2015 में इस बात की जाँच की कि एक चौथाई लोग राशन क्यों नहीं ले रहे हैं तो पाया कि 790 में से 290 का उँगलियों का सत्यापन असफल था और 93 का आधार डाटा ग़लत प्राप्त हो रहा था अर्थात् उँगली की छाप तो सही मिलती थी लेकिन आधार की जानकारी और राशन कार्ड में जानकारी बेमेल थी। राजस्थान में निकाली गयी जवाबदेही यात्रा में भी काफ़ी लोगों ने बताया कि वे राशन या पेंशन नहीं ले पा रहे थे क्योंकि या तो उँगलियों का सत्यापन नहीं होता था या डाटा ग़लत मिलता था। बहुत से लोगों को राशन लेने के लिए 4-5 बार चक्कर लगाने पड़ रहे थे - कभी बिजली नहीं, कभी नेटवर्क नहीं तो कभी मशीन ठीक नहीं या उँगली का सत्यापन नहीं हुआ। बहुत जगह से नेटवर्क के लिए पेड़ों या छतों पर चढ़ने जैसी ख़बरें भी मिल रही हैं। असल में शुरू से ही मालूम था कि बायोमेट्रिक्स अर्थात् उँगली की छाप और आँख की पुतली से व्यक्ति की पहचान की तकनीक पूरी तरह सही नतीजा नहीं देती। आमतौर पर भी इसमें 2-5% ग़लती होती है पर भारत के गर्म, धूलभरे, बिना एयरकण्डिशन वाले वातावरण में और ख़ासतौर पर कड़ी मेहनत कर घिसे हाथ वाले ग़रीब लोगों के मामले में तो यह क़तई भरोसे के काबिल नहीं है जबकि ख़ास यही लोग हैं जिन्हें लाभकारी योजनाओं की ख़ास ज़रूरत है। पर इन ज़रूरतमन्द मेहनतकश लोगों के लिए यह इनके लाभ मिलने का नहीं बल्कि वंचित होने का सबब बन गया है।

जहाँ तक आधार के द्वारा विभिन्न लाभकारी योजनाओं के स्थान पर सीधे कैश देने का सवाल है, उसमें आधार क्या कर सकता है, व्यक्ति की सही पहचान की बात को अगर मान भी लिया जाये तो। किस व्यक्ति को फ़ायदा दिया जाये, यह तय करने का काम तो उसी राजनीतिक-प्रशासनिक तन्त्र का है जिसका अब है। फिर यह कैश वितरण के लिए बैंक का एजेंट और एक बिचौलिया बन जाता है जो आधार के सत्यापन के ज़रिये कैश देता है। इसमें कुछ स्वचालित नहीं है और लूट-खसोट का तन्त्र न सिर्फ़ ज्यों का त्यों है बल्कि आधार के ज़रिये लाभ के अधिकारी को परेशान कर लाभ से वंचित करने के बहाने उनके पास और बढ़ जाते हैं। झारखण्ड, दिल्ली, छत्तीसगढ़, गुजरात सब राज्यों में जहाँ

भी इसे ज़रूरी बनाया गया है वहाँ न सिर्फ़ इससे कार्यकुशलता घटी है, बल्कि यह सार्वजनिक सेवाओं से ग़रीब और असहाय व्यक्तियों - आदिवासियों, दलितों, वृद्धों, महिलाओं-विधवाओं, अपंगों - को वंचित करने का ज़रिया बन गया है तथा इन सेवाओं में भ्रष्टाचार और चोरी को बढ़ा रहा है।

आधार को ज़रूरी कर देने से हर सार्वजनिक सेवा प्राप्त करने के लिए आवश्यक शर्तें भी बढ़ा दी गयी हैं - बिजली, उँगली स्कैन करने वाली मशीन, इंटरनेट और सर्वर का कनेक्शन। इनमें से एक भी उपलब्ध न हो या उँगली सत्यापित न हो या सत्यापित होने पर व्यक्ति का डाटा आधार की जानकारी से मेल न खाये तो व्यक्ति को सेवा प्राप्त करने से वंचित किया जा सकता है। सत्यापन की ही स्थिति यह है कि सबसे पहले पेंशन और रोज़गार गारण्टी योजना के लिए इसका उपयोग शुरू करने वाले आन्ध्रप्रदेश में 20-22% सत्यापन असफल होते हैं अर्थात् हर 5 में से एक! अन्य राज्यों में असफलता का आँकड़ा 30% तक जाता है। राजस्थान में जब सामाजिक सुरक्षा पेंशन को आधार से जोड़ा गया तो जिनके पास आधार नहीं था, या जिनकी जानकारी में ग़लतियाँ थीं ऐसे 10 लाख से अधिक लोगों को मृत या डुप्लीकेट कहकर उनकी पेंशन बन्द कर दी गयी। लेकिन जब शिकायतों के बाद कुछ सामाजिक संगठनों ने जाँच की तो पाया गया कि इनमें से बहुसंख्या मृत नहीं बल्कि जीवित थे। लेकिन ये सब लोग अत्यन्त ग़रीब, वृद्ध, असहाय, विधवा महिलाएँ, आदि थे जिन्हें प्रशासनिक तन्त्र ने एक झटके में 500 रुपये महीना पेंशन से वंचित कर दिया।

आधार की शुरुआत के समय कहा गया था कि जिन के पास कोई पहचानपत्र नहीं हैं, वे कल्याणकारी योजनाओं के लाभ से वंचित रह जाते हैं और आधार के द्वारा उन्हें पहचानपत्र देने से वे भी इन योजनाओं का लाभ ले सकेंगे। लेकिन आधार बनाते समय पहले से कोई पहचानपत्र होना ही एक आवश्यकता है तो इन लोगों का आधार भी नहीं बनता। हालाँकि परिचयदाता के द्वारा भी आधार देने का प्रावधान है लेकिन उस तरह से मात्र 2 लाख अर्थात् नगण्य आधार ही आज तक जारी हुए हैं। इस तरह जो सबसे ग़रीब और योजनाओं के लाभ से वंचित लोग हैं वह पहले से ही इससे बाहर हैं। फिर राशनकार्ड हो या पेंशन हर जगह इन लोगों को फ़र्जी घोषित कर इनके नामों को इन योजनाओं से काट दिया जा रहा है। इस प्रकार आधार ग़रीब लोगों के लिए समावेशी होने के बजाय उन्हें वंचित करने का औज़ार बन गयी है।

हम कुछ स्थितियों की कल्पना कर सकते हैं। 12 करोड़ स्कूली बच्चों को अब कहा जायेगा कि दोपहर का खाना लेने के लिए पहले आधार सत्यापन कराओ। स्कूल के शिक्षक और छात्र सब छोड़कर इस काम में लगेंगे। ऐसी जगह ढूँढ़ेंगे जहाँ नेटवर्क मिलता हो।

फिर भी अगर बिजली न हुई या सर्वर से कनेक्शन न मिला तो खाना नहीं मिलेगा। अगर कनेक्शन मिल गया तो भी जिस बच्चे का सत्यापन फेल हो जाये उसे कहा जायेगा कि आज खाना नहीं मिलेगा, आज भूखे रहो! अस्पताल में मरीज बीमारी से तड़प रहा है, लेकिन इलाज के लिए पहले आधार चाहिए, आधार नहीं तो मरीज को तड़पने या मर जाने के लिए छोड़ दिया जायेगा! कितनी निर्दय, अमानवीय, भयावह स्थिति होगी यह; और वह कैसी निरंकुश शासन व्यवस्था है जो ऐसी नीतियाँ निर्धारित करती है, फ़ैसले लेती है कि तड़पते मरीज के इलाज के लिए पहले आधार माँगा जाये? स्कूल में आये बच्चे को मिड डे मील देने के पहले उससे पहचान का सबूत देने को कहा जाये?

यह ऐसी शासन व्यवस्था ही कर सकती है जो सबको स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध न होने को समस्या नहीं मानती बल्कि उसकी नज़र में जो लोग बग़ैर पहचान का सबूत दिये इलाज करवाना चाहते हैं, वे मरीज समस्या हैं। ऐसी हुकूमत के लिए पर्याप्त मात्रा में भोजन की अनुपलब्धता और बच्चों में बढ़ता कुपोषण समस्या नहीं है बल्कि बग़ैर पहचान का सबूत दिये स्कूल में मिड डे मील लेने आ गये बच्चे समस्या हैं। यह सिर्फ़ ऐसी हुकूमत कर सकती है जो ग़रीब, मेहनतकश लोगों की ग़रीबी का कारण वर्तमान व्यवस्था में निहित शोषण को नहीं मानती बल्कि उसकी नज़र में ये सब लोग काहिल, कामचोर, भ्रष्ट हैं जो मेहनती, प्रतिभाशाली पूँजीपतियों के पुरुषार्थ से कमाये धन को मिड डे मील, राशन और इलाज आदि के ज़रिये लूट लेना चाहते हैं। इसलिए यह हुकूमत ऐसी ताक़त चाहती है कि वह जब जिसे अपराधी या सन्देहास्पद माने, उसकी पहचान कर उसे ये सुविधाएँ लेने के बहाने इस तथाकथित लूट से रोक सके।

यह तो स्पष्ट ही है कि आधार का मक़सद जनता तक सुविधाएँ पहुँचाना नहीं है। तो फिर मक़सद क्या है? मक़सद है एक ऐसी निगरानी व्यवस्था जो देश के हर नागरिक को हर समय उसके चाहे बिना ही पहचान कर सके, उसकी हर गतिविधि पर नज़र रख सके और जहाँ, जब चाहे उसे किसी गतिविधि से रोक सके, उससे ख़फ़ा हो जाये तो उसका राशन, वेतन, पेंशन, स्कूल में बच्चे के दाखिले, अस्पताल में इलाज, मोबाइल पर बात करने, इंटरनेट के ज़रिये कुछ करने-पढ़ने, पुस्तकालय से कोई किताब लेने, कहीं जाने के लिए ट्रेन/बस का टिकट लेने अर्थात् किसी भी सुविधा से वंचित कर सकने की ताक़त हासिल कर सके।

## तकनीकी पहलू

आधार की वास्तविकता को समझने के लिए इसके कुछ तकनीकी पहलुओं पर भी ग़ौर कर लेना ज़रूरी है। हालाँकि यह बात कुछ हद तक मानी जा सकती है कि प्रशासनिक ज़रूरतों के लिए व्यक्ति की सही पहचान की जाये। लेकिन उसके लिए सबकी जैविक पहचान और अन्य

सारी जानकारीएँ एक केन्द्रीय स्थान पर एकत्र करने और हर व्यवहार/लेन-देन के वक़्त उसे सत्यापित करने की क़तई कोई आवश्यकता नहीं होती। इसके लिए दुनिया भर में, सभी विकसित देशों में भी विभिन्न क्रिस्म के पहचान पत्र आदि जारी किये जाते हैं, जिनमें ज़रूरत भर की जानकारी रहती है लेकिन वह खुद उस व्यक्ति के पास रहती है, न कि किसी एक जगह सरकार के पास; बल्कि जनवादी चिन्तन तो यही कहता है कि सरकार या प्रशासन का कोई भी अंग किसी भी नागरिक के बारे में ज़रूरत से बिल्कुल भी ज़्यादा सूचनाएँ इकट्ठा न करे क्योंकि सत्ता की ताक़त के पास व्यक्ति के बारे में ज़रूरत से अधिक जानकारी हमेशा ग़लत मक़सद के लिए इस्तेमाल होने का खतरा बना रहता है। ख़ासतौर पर आधुनिक तकनीक के साथ एक केन्द्रीय जगह पर एकत्र जानकारी का भण्डार सबसे अधिक असुरक्षित है। यह अगर नेटवर्क पर भी उपलब्ध है तो फिर तो इसकी कोई सुरक्षा जैसी चीज़ होती ही नहीं। बैंकों से लेकर भारी सुरक्षा वाले अमेरिकी सीआईए के सूचना भण्डारों में बार-बार सेंध लग चुकी है। ऊपर से बायोमेट्रिक अर्थात् जैविक सूचनाओं के साथ छेड़छाड़ करना, उनकी नक़ल करना, उनका नेटवर्क बीच में ही चोरी कर दूसरों द्वारा इस्तेमाल करना बेहद आसान है, बिना बहुत तकनीकी ज्ञान और महँगे उपकरणों के। यहाँ तक कि उँगलियों पर गोंद, बोरोलीन, मोम, आदि के प्रयोग से भी इनको स्कैन करने वाली मशीनों को भ्रमित किया जा सकता है। लेकिन सबसे खतरनाक है कि तकनीक के उपयोग से यह सब जानकारी बड़ी संख्या में बनायी जा सकती है और इसको बग़ैर सम्बन्धित व्यक्तियों की उपस्थिति और जानकारी के प्रयोग किया जा सकता है। खुद आधार अर्थोरेटी इससे इंकार नहीं करती कि उसके द्वारा किये गये सत्यापन पर पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता। इसलिए जब यह अर्थोरेटी किसी अन्य एजेंसी के साथ आधार द्वारा पहचान सत्यापन का समझौता करती है तो उसमें साफ़ लिखा जाता है कि इसमें सही सत्यापन की कोई गारण्टी नहीं है।

पिछले दिनों जो मामले सामने आये हैं, वह इस बात की पुष्टि करते हैं कि उपरोक्त बातें मात्र आशंकाएँ नहीं हैं, बल्कि वास्तविकता में यह सब किया जा रहा है। एक बड़े बैंक, एक्सिस बैंक और उसके दो पार्टनर संगठनों द्वारा एक व्यक्ति की जैविक सूचनाओं को रिकॉर्ड कर 10 महीने में उनके 397 बार इस्तेमाल का मामला सामने आया है। रिलायन्स जिओ के 6 सेल्समैन इन्दौर में आधार डाटा बेचते हुए पकड़े गये जिसको खरीदकर कोई दूसरे व्यक्ति के नाम पर सिम ले सकता है। 5 लाख बच्चों की सम्पूर्ण आधार जानकारी एक वेबसाइट पर खुलेआम उपलब्ध पकड़ी गयी है। क्योंकि आधार अर्थोरेटी अब विभिन्न संस्थाओं को

(पेज 10 पर जारी)